स्त्री मुक्ति का प्रश्न और जया जादवानी की कहानियाँ

(Question of Women Liberation and the Short Stories of Jaya Jadvani)

एम.फिल. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक

डॉ. राम चन्द्र

शोधार्थी

सुरभि त्रिपाठी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2009

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre Of Indian Languages
School Of Language, Literature & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 21/07/2009

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle **"STRI MUKTI KA PRASHNA AUR JAYA JADVANI KI KAHANIYAN" ("Question of Women Liberation and the Short Stories of Jaya Jadvani")** by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Surabhi Tripathi
Surabhi Tripathi
(Research Scholar)

Dr. Ram Chandra
(Supervisor)

Prof. Chaman Lal
(Chairperson)

GRAM : JAYENU : Tel: (91-011) 26741557, 26742626 Extn. : 4217 (D) 26704217 Fax : (91-011)26717603, 26717586

माँ के प्रति.....

विषय-सूची

		पृष्ठ-संख्या
अपनी बात		i-v
प्रथम अध्याय :	**स्त्री मुक्ति का प्रश्न : आधुनिकता के आईने में**	1-40
	1.1 'आज' की आधुनिकता और स्त्री प्रश्न	
	1.2 पितृसत्ता, परिवार एवं विवाह संस्था	
	1.3 आधुनिक स्त्री के संदर्भ में नैतिकता का सवाल	
	1.4 समकालीन हिन्दी साहित्य में महिला लेखन के सरोकार	
द्वितीय अध्याय:	**जया जादवानी की कहानियाँ : अन्तर्वस्तु का चयन**	41-94
	2.1 जया जादवानी का लेखन : संक्षिप्त परिचय	
	2.2 कहानियों की निर्मिति / बुनावट	
	2.3 परिवेश और छवियाँ	
तृतीय अध्याय :	**जया जादवानी की कहानियों में स्त्री-मुक्ति का स्वरूप एवं भाषागत वैशिष्ट्य**	95-129
	3.1 'स्त्री' जो नींद से जाग रही है।	
	3.2 मुक्तिकामी स्वरों की अहमियत	
	3.3 कहानियों का भाषागत वैशिष्ट्य	
उपसंहार		130-134
परिशिष्ट	जया जादवानी से बातचीत (साक्षात्कार)	135-139
ग्रंथ -सूची		140-144

अपनी बात

समाज एवं व्यवस्था में स्त्री की अधीनस्थ स्थिति को लेकर मेरे मन में शुरु से ही उथल-पुथल चलती रही है। 'क्यों लड़की का जन्म सबके दुःख का कारण बनता है? क्यों उसे लड़कों के समान खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और पढ़ने लिखने नहीं दिया जाता? क्यों एक बड़ी होती लड़की सबकी आँखों की किरकिरी बन जाती है? क्यों उसके हर क्रिया-कलाप पर हर-क्षण निगरानी रखी जाती है? क्यों दिन भर घर परिवार और बच्चों के लिए खटती औरत को पुरुष जब चाहे तब 'लतिया' और 'गरिया' सकता है? स्त्री की सारी नैतिकता उसकी यौन-शुद्धता से क्यों जोड़ी जाती है? क्यों एक स्त्री के लिए जो अनैतिक है, वह पुरुष के लिए नहीं? क्यों स्त्री की शारीरिक-संरचना पुरुष के लिए सर्वाधिक घृणित और सर्वाधिक ललचाने वाली है? स्त्री-सौन्दर्य के सारे प्रतिमान उसकी देह में ही क्यों निहित है'? ऐसे ही न जाने कितने प्रश्न मन में कौंधते रहते।

घर में सुशिक्षित एवं अतिसहनशील माँ के जीवन की कठिनाईयों को देख-देख कर एक गहरा असंतोष मेरे भीतर पसरता गया। तब मुझे भी लगता था कि औरत ही औरत की सबसे बड़ी दुश्मन है। यह तो बहुत बाद, बल्कि, एम-फिल-करने के दौरान भलीभाँति समझ पाई कि ऐसा होने के पीछे वास्तविक कारण क्या है? तमाम कष्टों को चुपचाप सहती माँ ने कभी मुँह नहीं खोला। 'अच्छी औरत' के संस्कार उन्हें सब-कुछ झेलने को मजबूर करते रहे। शायद उनकी चुप्पी ही अन्याय और अत्याचार के प्रति मेरे मन में दुगुने वेग से विद्रोह की भावना भरती रही। 'स्कूल' की पढ़ाई के दौरान ही मैंने कई कटु अनुभवों का सामने किया। उसी समय यह भी देखा और जाना कि स्त्री के अलावा मनुष्य जाति का एक और हिस्सा अपने जन्म से ही अभिशप्त है, जिसे 'नीच जात' (दलित) कहते हैं। 'दलित' स्त्री के जीवन के 'दोहरे अभिशाप' से उसी दौरान मेरा साक्षात्कार हुआ था।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान् स्त्री की क्रूर-नियति के पीछे निहित कारणों को सैद्धांतिक स्तर पर जानने-समझने को मौका मिला। तत्पश्चात्, जे.एन.यू. से एम.फिल. करने का सौभाग्य प्राप्त होने पर मैंने स्त्री-प्रश्नों को अपने शोध का विषय बनाने की ठानी। इस विषय पर बातचीत के दौरान बड़े भाई तुल्य

डॉ. रामचन्द्र जी ने जया जादवानी की कहानियों को शोध-विषय बनाने का सुझाव दिया। इससे पहले मैंने जया जादवानी की कुछ कहानियाँ पत्रिकाओं में पढ़ी थीं, इसलिए थोड़ा-बहुत ही जानती थी। जिस कहानी ने मुझे विशेष प्रभावित किया था उसका नाम है 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है'। फिर मैंने जया जादवानी के दो कहानी-संग्रहों को पढ़ा – मुझे ही होना है बार-बार' और 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' स्त्री के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव जीवन के स्वस्थ्य विकास की आकांक्षी जया जी की कहानियों ने मुझे इन्हें और गहराई से जानने को उकसाया। मैंने पाया कि अभी तक इन महत्त्वपूर्ण कहानियों पर कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है, फलस्वरूप, मैंने इन कहानियों को शोध-विषय के रूप में चुना।

इन कहानियों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है कथा-नायिकाओं की संवेदनशील एवं गहन जीवन दृष्टि। इन कहानियों की नायिकाएँ अपनी स्थिति और भूमिका पर विचार करने के साथ-साथ अपने समय, समाज और संस्कृति पर भी अत्यंत सजग दृष्टि से विचार करती हैं। आत्मसाक्षात्कार की कठिन प्रक्रिया से गुजर कर आत्मविस्तार की ओर बढ़ने वाली इन स्त्री-छवियों को आज हम अपने आस-पास कहीं भी देख सकते हैं। बदली हुई सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने स्त्री की स्थिति और भूमिका में अभूतपूर्व बदलाव उत्पन्न किया है।

17वीं–18वीं शताब्दी में आविर्भूत आधुनिकता की अवधारणा और लोकतांत्रिक प्रणाली ने स्त्री को अपने हक की लड़ाई लड़ने हेतु जमीन मुहैया करवाई। लम्बे संघर्ष के बाद स्त्रियाँ समाज एवं व्यवस्था में अपने अधिकार सुनिश्चित करवा पाईं। भारत में पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों की दशा सुधारने हेतु कई प्रयत्न किए गए। हालाँकि, ये प्रयत्न विशुद्ध रूप से सामाजिक-सुधार की भावना से परिचालित थे, फिर भी स्त्री ने इन सीमित सम्भावनाओं के बीच ही अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए 'स्पेस' तलाश लिया।

स्वतंत्र भारत में स्त्री को पुरुष के समान संवैधानिक अधिकार मिले। शिक्षा ने स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया। पश्चिम के नारीवादी आंदोलनों और सैद्धान्तिक चिन्तन ने दुनिया भर की स्त्रियों को अपने अधिकारों और अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रति चेताया। इसके साथ ही पितृसत्ता और

उसकी 'सहायक-संस्थाओं' को समझने की दृष्टि प्रदान की। दुनिया भर में हुए सामाजिक-आर्थिक बदलावों, तकनीकी विकास एवं वैज्ञानिक-शोधों ने 'स्त्री' को विमर्श के केन्द्र में ला खड़ा किया। आधुनिक स्त्री ने 'पुरुष के सुरक्षित किलों' में सेंध लगाई।

साहित्य को उसने आत्माभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में चुना। अब तक प्रचलित पुरुषवादी मानदण्डों पर सवाल खड़े किए और स्त्री से जुड़ी समस्याओं को साहित्य के माध्यम से उजागर किया। '90 के दशक से हिन्दी साहित्य में स्त्री-लेखन में महत्त्वपूर्ण बदलाव रेखांकित किया जा सकता है। समाज के हर शोषित-वंचित वर्ग की आवाजें साहित्य में गूँजने लगीं। इसके साथ ही साहित्य के पितृसत्तात्मक मानदण्ड ध्वस्त होने लगे। स्त्री के समस्त मानवीय अधिकारों की बात उठाई जाने लगी। सामाजिक-आर्थिक दबलाबों के कारण बदलती स्त्री छवि को इस दशक के उपन्यासों और कहानियों में आसानी से ढूढ़ा जा सकता है। आधुनिक स्त्री अत्यंत सजग दृष्टि से अपनी समस्याओं और उनके कारणों को खोज रही है। अपनी लगन एवं मेहनत के चलते उसने चित्र-प्रचलित मानदण्डों को तोड़ा है।

इसके बावजूद मूलभूत सवाल वही है– स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकारे जाने का। समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे को गिराए बिना स्त्री की स्थिति और भूमिका में वास्तविक बदलाव सपना ही है। फिर भी, सुशिक्षित संवेदनशील और अपने 'स्व' के प्रति जागरूक' आधुनिक स्त्री अपनी क्षमताओं को प्रमाणित करने के लिए कटिबद्ध है। फलस्वरूप, स्त्री की परम्परागत छवि में बदलाव साफ देखा जा सकता है। स्त्री-पुरुष सम्बंधों में बदलाव आया है। परिवार एवं विवाह जैसी पितृक संस्थाओं के स्त्री-विरोधी चरित्र पर प्रश्नचिन्ह लग रहे हैं। साहित्य में इन सारे बदलावों और इनसे उपजे प्रश्नों पर बहस ज़ारी है। स्त्री से जुड़े हर प्रश्न को लेखिकाएँ अत्यंत बेबाकी के साथ साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही हैं। इसके साथ ही पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के बरक्स लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित वैकल्पिक व्यवस्था की माँग की जा रही है। आधुनिक स्त्री अपनी मुक्ति के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति की राहें तलाश रही है। आधुनिक स्त्री के प्रश्नों एवं जया जादवानी की कहानियों में इनकी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए शोध-प्रबंध को तीन अध्यायों में बाँटा गया है।

प्रथम अध्याय – 'स्त्री मुक्ति का प्रश्न : आधुनिकता के आईने में' बदलती सामाजिक -आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में स्त्री-प्रश्नों को स्पष्ट करता है। बदलते हुए समय, समाज और परिवेश में स्त्री की परम्परागत छवि बदल रही है। आधुनिकता और लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों ने स्त्री को अपने हकों की लड़ाई हेतु प्रेरित किया है। पितृसत्तात्मक विचारधारा एवं विवाह और परिवार संस्थाओं के स्त्री-विरोधी चरित्र और आधुनिक स्त्री का इनके प्रति विरोध भी इस अध्याय में उजागर किया गया है। आधुनिक स्त्री ने नैतिकता के प्रचलित मानदण्डों का तोड़ा है। समकालीन हिन्दी साहित्य में महिला लेखन लगातार इन प्रश्नों को उठा रहा है।

द्वितीय अध्याय – 'जया जादवानी की कहानियाँ : अन्तर्वस्तु का चयन' के अनतर्गत जया जादवानी के लेखन का संक्षिप्त परिचय देने के साथ ही कहानियों में अभिव्यक्त परिवेश एवं स्त्री छवियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

तृतीय एवं अन्तिम अध्याय– 'जया जादवानी की कहानियों में स्त्री मुक्ति का स्वरूप' के अन्तर्गत जया की कहानियों में चित्रित अपने 'स्व' और समाज के प्रति जागरुक, संवेदनशील आधुनिक स्त्री-छवि पर बात करते हुए मुक्ति की आकांक्षी स्त्रियों के स्वरों की अहमियत की विवेचना की गई है। जया जादवानी की कहानियों की भाषिक संरचना को स्त्री भाषा के सन्दर्भ में परखने का भी प्रयास किया गया है।

इस शोध-कार्य को अकेले पूरा करना कठिन ही नहीं, असम्भव होता यदि मेरे शोध-निर्देशक, शुभचिन्तकों, मित्रों और सबसे बढ़कर परिवार वालों ने अपना अमूल्य सहयोग न दिया होता। विषय चुनने से लेकर किताबें चयनित करने, दृष्टि को व्यापक, संयत और आलोचनात्मक बनाने में मेरे शोध-निर्देशक डॉ॰ रामचन्द्र जी ने सदैव सहयोग दिया। जब भी विषय की जटिलता मेरी राह में बाधा डालती, मैं अपनी परेशानी रामचन्द्र जी के ऊपर डाल देती और वे समस्या को अत्यंत सहज ढंग से सुलझा देते। उनके भाई सरीखे स्नेह और महत्त्वपूर्ण सहयोग के लिए 'आभारी' शब्द बहुत छोटा पड़ जाएगा। 'कृतज्ञ हूँ' कहकर मैं गुरु के ऋण से मुक्त नहीं होना चाहती। बस, सदैव उनके स्नेह और सहयोग की आकांक्षी रहना चाहती हूँ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के मेरे पूर्व अध्यापकों – सूर्यनारायण सर और लालसा मैडम ने न केवल महत्त्वपूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराई, वरन् क्षमताओं को सही

दिशा में विकसित करने की दृष्टि भी दी। इसके लिए वे सदैव मेरे लिए सम्मानीय रहेंगे। समय-समय पर जिन शुभ चिन्तकों ने मुझे अपना भरपूर सहयोग दिया और मेरा हौसला बढ़ाया, वे हैं – अनिरुद्ध, राजमणि, स्नेह सुधा, तनुजा, रजनी, विनोद और चन्द्रकांत। प्रिय भावना दीदी ने पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराने के साथ ही अपने स्नेह से भी हमेशा मुझे सिंचित किया। इसके लिए मैं हमेशा उनकी आभारी रहूँगी।

नीलू, करिश्मा, रंजना, प्रियंका, अनन्या और प्राची हमेशा मुझे आगे बढ़ने को प्रेरित करते रहे। मैं अपने शिक्षकों माननीय वीरभारत तलवार, रमण प्रसाद सिन्हा, ओ-पी- सिंह, गोविन्द प्रसाद और देवेन्द्र चौबे की विशेष आभारी हूँ, जिनका सहयोग और स्नेह हमेशा मिला है। टाइपिस्ट अशोक जी की मेहनत और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं थोड़ा-बहुत जो कुछ भी कर सकी हूँ, उसमें मेरे माता-पिता और बड़े भाई सौरभ का योगदान अकथनीय है। तमाम बाधाओं से जूझते हुए मेरे माता-पिता ने मेरी शिक्षा को हमेशा प्राथमिकता दी है। उनका मुझ पर अटूट स्नेह, विश्वास मुझे सदैव जीवन-संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा देता है। मेरे प्रिय भाई ने हमेशा मुझे निडर, आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनने को प्रेरित किया। मेरे हर निर्णय पर अपनी सहज-स्वीकृति की मुहर लगाकर मुझे अनगिनत संघर्षों से जूझने और सफल होने की शक्ति दी। प्रिय सिद्धार्थ के सहयोग और सूझ-बूझ ने मुझे अपने हक के लिए लड़ना और मेहनत करके आगे बढ़ना सिखाया। मेरे प्रति इन सभी के निश्छल प्रेम और अटूट विश्वास का कोई मूल्य हो ही नहीं सकता। इन सबके सपनों को पूरा कर सकूँ, यही मेरी इनके प्रति वास्तविक कृतज्ञता होगी।

सुरभि त्रिपाठी

अध्याय प्रथम

स्त्री मुक्ति का प्रश्न : आधुनिकता के आईने में

1.1 'आज' की आधुनिकता और स्त्री प्रश्न

वर्तमान समय में स्त्रीत्ववादी विमर्श साहित्य का एक प्रमुख मुद्दा बनकर उभरा है। बीती सदी के अन्तिम दो दशकों में स्त्री ने समय एवं समाज में अपनी अलग पहचान और जगह बनाई है। '80 के दशक से पहले की परिस्थिति और आज की परिस्थितियों के बीच परिवर्तन एवं विकास की एक लम्बी कहानी है। बदलते समय और सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक दबावों ने परम्परा का कई मायनों में रूपान्तरण किया है। उद्योगों के कारण बढ़ते नगरीकरण और आर्थिक दबावों में स्त्री को घर की चारदीवारी से बाहर निकलने के लिए ऐतिहासिक रूप से परिस्थितियों का निर्माण किया है। आज हर क्षेत्र में स्त्रियाँ लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। शिक्षा एवं आर्थिक जरूरत इसका प्रमुख कारण है। साथ ही, अब उनकी समस्याएं और अन्तर्विरोध खुलकर सामने आ रहे हैं। आधुनिक संचार क्रांति (दूरदर्शन, विभिन्न चैनल, इन्टरनेट और मोबाइल आदि) और तकनीकी विकास ने स्त्री की स्थिति में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तमाम कमियों के बावजूद मीडिया (लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ) ने स्त्री प्रश्नों को सामने लाने और उन्हें बहस का मुद्दा बनाने में अहम् रोल अदा किया है। स्त्री की बदली हुई भूमिका के कारण एक तरफ उसका शोषण बढ़ा है, तो दूसरी और उसकी हैसियत भी बढ़ी है। "यदि दमन बढ़ा है तो अधिकार भी मिले हैं।"[1]

"जहाँ एक ओर शिक्षा, प्रशासन, पुलिस, प्रौद्योगिकी और राजनीति हर क्षेत्र में भारतीय स्त्री ने पुरुषों के पारम्परिक किलों में सेंध लगाई है, वहीं हमारे सदियों से चले आ रहे आज तक बरकरार सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के तहत उसका शोषण भी जारी है; जारी ही नहीं बल्कि बढ़ता जा रहा है, वह भी दोहरे रूप में– एक, गृहिणी के रूप में, दूसरा, कामकाजी स्त्री के रूप में। इस संक्रमणकाल में तमाम बाधाओं के बावजूद चाहे घर की देहरी हो, शिक्षा का क्षेत्र हो, राजनीति के चक्रव्यूह हों, पुलिस या प्रशासन हो – सब कहीं उभर रही है एक नई औरत – जो अब भी वैसी ही ममतामयी है, जैसे भारत की स्त्री सदियों से, हमेशा-हमेशा से रही है लेकिन जो

---

[1] क्षमा शर्मा, स्त्री का समय, पृष्ठ–18

सदियों से अपने ऊपर ढाए जा रहे जुल्मों को अब नहीं सह सकती, जिसकी अब अपनी एक स्वतंत्र पहचान बन रही है...।"[2]

'संसद से सड़क तक' भारतीय स्त्री की इस नई छवि को देखा जा सकता है। महिला प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल और राष्ट्रपति के बाद देश की पन्द्रहवीं लोकसभा की प्रथम महिला अध्यक्ष बनने का श्रेय मीरा कुमार को मिला है। संसद में स्त्री की माँगों को उठाने के लिए पहले की तुलना में ज्यादा बड़ी संख्या में महिला प्रतिनिधि मौजूद हैं। मीडिया, मॉडलिंग, विज्ञापन, प्रशासन और सामाजिक सेवा के क्षेत्र- हर जगह स्त्री अपने आप को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। आधुनिक नारी पुरुष की बपौती माने जाने वाले हर क्षेत्र में अपनी सामर्थ्य दिखा रही है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी इनके स्वरों को पूरी धमक के साथ सुना सकता है। लेकिन यह दृश्य एकाएक नहीं उभर आया। इसके पीछे स्त्री-संघर्षों का लम्बा इतिहास है।

यूरोप और उत्तरी अमेरिका में स्त्री अधिकारों का प्रश्न प्रबोधन युग एवं पुनर्जागरण युग के आधुनिक जीवन मूल्यों–विवेक सम्मतता, तार्किकता एवं समानता तथा प्राकृतिक अधिकारों (जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार) की माँग के तहत उभर कर सामने आया। आधुनिकता की अवधारणा के आगमन के साथ ही लोकतांत्रिक प्रणाली का आगमन हुआ और स्त्रियों ने इन मूल्यों के प्रकाश में अपनी स्थिति की विवेचना शुरु की।

"आधुनिकता के उदय के बाद प्रबोधनकाल में बाकायदा संगठित रूप में अस्मिताओं के आन्दोलन होने लगे।"[3] उभरती हुई पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने 'मुक्त व्यक्ति' के विचार को आगे बढ़ाया और एक विचारधारा के तौर पर उदारवाद का आगमन हुआ। विचार के केन्द्र में 'व्यक्ति' और उसके अधिकार आ गए। व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए फ्रांसीसी क्रान्ति (1789) जैसी अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना घटी। इस प्रकार 'आज' की आधुनिकता अपने भीतर अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं, विचारों और मानवीय मूल्यों को समेटे हुए है।

---

[2] उषा महाजन, बाधाओं के बावजूद नई औरत, पुस्तक के फ्लैप से,
[3] अजय वर्मा, मुक्ति का अस्मितावादी विमर्श और स्त्री, जनमत, वर्ष 25, अंक–2, पृ.20

मोटे तौर पर आधुनिकता की अवधारणा का प्रारम्भ दुनिया भर में हुए प्रबोधनकालों, नवजागरणों, पुनर्जारणों और क्रांतियों (विशेषतः इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति औद्योगिक क्रांति) से माना जाता है। इन क्रांतियों के नारों और मांगों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आधुनिकता का तात्पर्य पारम्परिक जीर्ण-शीर्ण एवं अनुपयोगी मूल्यों के स्थान पर नवीन ज्ञान-विज्ञान एवं तर्काधारित मानवीय मूल्यों की स्थापना से है। "आधुनिकता का संबंध मनुष्य की चेतना के विकास से है। यह एक मानसिक परिघटना है। तर्क और विवेक इसके आधार हैं।"[4] अर्थात्, आधुनिकता का संबंध ज्ञान और तर्क पर आधृत मानवीय मूल्यों से है। यह मनुष्य को मानसिक रूप से जाग्रत करती है, उसे तार्किक बनाती है और उसे सोचने-विचारने में सक्षम बनाने के साथ ही तथ्यों, स्थितियों और प्रश्नों को विवेकपूर्ण ढंग से विश्लेषित करना सिखाती है। इस संदर्भ में आधुनिकता केवल 'तात्कालिक' न होकर 'विचार का क्रम' भी है।

वास्तव में, इतिहास के हर कालखण्ड में समाज में कुछ आधुनिक, नवीन मूल्य पनपते हैं और हर दौर में अपने निहित स्वार्थों के कारण कुछ वर्ग (समुदाय, तबके) इन आधुनिक मूल्यों के खिलाफ परम्परा को खड़ा कर देते हैं और आधुनिक मूल्यों को दबाने का प्रयास करते हैं। इतिहास गवाह है कि, स्त्रियों के शोषण के लिए पितृसत्ता ने हमेशा ही परम्परा की ढाल का सहारा लिया है। 'आज' की आधुनिकता की विशिष्टता को स्पष्ट करते हुए सत्येन्द्र रंजन लिखते हैं, "आज की आधुनिकता सिर्फ वक्त के साथ विकसित होने वाली सामान्य आधुनिकता नहीं है। यह एक खास सन्दर्भ और खास राजनीतिक-सामाजिक परिघटनाओं से विकसित हुई है। इसके पीछे मानव के ज्ञान, तर्क और अनुसंधान-विज्ञान-तकनीक और जनसंघर्षों का खासा लम्बा इतिहास है। यह एक विश्वव्यापी प्रक्रिया रही है। इसके पीछे यूरोप में नवजागरण से लेकर औद्योगिक क्रांति, मैग्नाकार्टा से अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और फ्रांस की क्रांति, समाजवाद और साम्यवाद की विचारधाराओं का प्रादुर्भाव और विस्तार, रूस की बोल्शेविक क्रांति और दुनिया के अन्य देशों में समाजवादी क्रांतियाँ, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका

---

[4] सत्येन्द्र रंजन, गुलामी की परम्पराः आधुनिकता की आजादी (लेख), स्त्री, परम्परा और आधुनिकता (सं.) राजकिशोर, पृ.48

व अन्य अलग-अलग देशों में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों तथा आज समता के लिए चल रहे संघर्षों का इतिहास रहा है। विकास एवं संघर्ष की इन घटनाओं ने दुनिया के स्तर पर नए मूल्य और नई संस्कृति विकसित की है।"[5]

इस दृष्टि से, आधुनिकता द्वन्द्वों और संघर्षों से पैदा हुआ एक नवीन, मानवीय और न्यायपूर्ण नजरिया है। आधुनिकता का अर्थ केवल अधुनातन या नवीन होना नहीं होता, "किसी भी विचार की आधुनिकता जीवन के संदर्भ में ही समझी जा सकती है और जीवन की समग्रता के संदर्भ में ही उसकी कोई कीमत है।"[6] इस नजरिए ने ही दुनिया भर में होने वाले आन्दोलनों और क्रांतियों के फलस्वरूप आए बदलावों के मद्देनज़र स्त्री को व्यवस्था में अपनी भूमिका और स्थान तलाशने, अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के बावजूद, लक्ष्यों की प्राप्ति हो जाने पर पितृसत्ता द्वारा पुनः अंधेरे कोनों में धकेल दिए जाने की स्थिति पर विचार करने की अन्तर्दृष्टि प्रदान की। इस स्थिति के कारणों का ज्ञान हो जाने पर और समस्या के मूल उत्स को पहचान लेने पर स्त्री को अपने प्रश्नों और अधिकारों का मुद्दा उठाने का अवसर मिला। इस तरह, दुनिया भर में होने वाले लोकतांत्रिक आन्दोलनों और क्रांतियों ने स्त्री-प्रश्नों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जो आधुनिक चिन्तन की देन थी।

आधुनिकता ने स्त्री को यह सोचने पर मजबूर किया कि स्वतंत्रता, समानता के लिए होने वाले आन्दोलनों में क्या उसकी भी स्वतंत्रता, समानता शामिल थी और, उसे उत्तर मिला : नहीं। यहाँ मानव का मतलब पुरुष (वह भी कुलीन वर्ग) के अधिकार और मानवाधिकारों का मतलब पुरुषाधिकार था। 'आधी दुनिया' जिनकी हक़दार नहीं थी। लेकिन क्यों? गौरवपूर्ण क्रांति हो या फ्रांसीसी क्रांति, अमेरिकी क्रांति, भरतीय स्वतंत्रता संग्राम या फिर एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका में होने वाले उपनिवेश विरोधी आन्दोलन–स्त्रियों द्वारा पर्याप्त संख्या में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के बाद, जैसे ही लक्ष्यों की पूर्ति हो गयी, उन्हें वापस घरों में जाकर अपनी परम्परागत भूमिका निभाने को कहा गया। बदली हुई स्थितियों और व्यवस्था में उनके लिए कोई भी जगह निर्धारित नहीं थी। महत्त्वपूर्ण सामाजिक भूमिकाएं निभा चुकी स्त्री के लिए वापस चारदीवारियों में वापसी सम्भव नहीं थी।

---

[5] वही, पृ.41

[6] वंदना भारतीय, और कितना! (लेख), स्त्री, परम्परा अैर आधुनिकता (सं.) राजकिशोर, पृष्ठ–58

फ्रांसीसी क्रांति की 'समानता की अवधारणा' पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए ओलम्पी डी गूँजे ने कहा कि, "समानता केवल बुर्जुआ, सम्पन्न पुरुषों को उपलब्ध है, इसमें स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं है"[7] तो इसके प्रत्युत्तर में तथाकथित क्रांतिकारी व्यवस्था ने इस महिला को मौत के घाट उतार दिया। 1792 ई. में फ्रांस की ही मेरी वोलस्टन क्राफ्ट ने 'ए विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमेन' में लिखा, "उसकी रचना पुरुष का खिलौना, उसका झुनझुना बनने के लिए हुई है, जिसे तर्क को खारिज़ करके, वह जब भी जी बहलाना चाहे, बजना चाहिए।"[8] जाहिर है कि ऐसे वक्तव्य स्त्री विचारकों के असंतोष और अन्याय के विरूद्ध उनके आक्रोश का परिणाम थे। यह तथ्य है कि फ्रांसीसी क्रांति होने के पीछे जिस लोकतांत्रिक चेतना, विवेकशीलता और सुरुचिपूर्ण चिन्तन का योगदान था, वह मारकस दो रोमवाँ से लेकर नीना द लेक्लॉ और जुली द लेस्पिनास जैसी "शिक्षित, चतुर और ऊर्जावान"[9] महिलाओं द्वारा संचालित विद्वत् सभाओं में होने वाले विचार-विमर्श और तर्कशीलता का परिणाम था। लेकिन कितने लोग आज इस तथ्य को जानते हैं।

"18वीं सदी के अन्तिम दिनों तथा 19वीं सदी में मेरी वोलस्टनक्राफ्ट, काल्पनिक समाजवादियों, विलियम थाम्पसन, जेम्स मिल से लेकर 'सेनेका फॉल्स कन्वेशन' (1848) तथा जॉन स्टुअर्ट मिल तक प्रारंभिक नारीवादियों ने नारियों के जनतांत्रिक अधिकारों की जो मांग उठाई थी, 19वीं सदी के अन्त तक उनमें से अधिकांश मांगों को ब्रिटेन तथा अमेरिका में कानूनी तौर पर मान लिया गया था। यद्यपि वास्तविक समानता का अधिकार अभी बहुत दूर की चीज़ थी, लेकिन महिलाओं में शिक्षा का विस्तार हुआ, ऑफिस, अदालतों में महिलाएं काम करने लगीं।"[10] सैद्धान्तिक तौर पर महिलाओं को भी पुरुषों के समान 'बौद्धिक क्षमता सम्पन्न' मान लिए जाने और उन्हें पुरुषों के समान हर तरह की 'शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार' मिल जाने पर, "आगे की वह जमीन तैयार हुई, जिस पर खड़े होकर

---

[7] अनुपमा राय, पश्चिम में समकालीन महिला आंदोलन (लेख) नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुददे, (सं.) साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, पृ. 106

[8] जर्मेन गीयर, बधिया स्त्री, (अनु. मधु.बी. जोशी) पृ. –59 पर उद्धृत

[9] कुसुम त्रिपाठी, विश्व महिला आन्दोलन का इतिहास, जनमत, वर्ष 25, अंक–2, पृ. 38।

[10] सरला माहेश्वरी, नारी प्रश्न, पृ. 28

महिलाओं को समान कानूनी और राजनीतिक अधिकार देने की मांग की जा सकती थी।"[11] बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में 'सार्विक मताधिकार' के साथ ही यूरोप, अमेरिका के अधिकांश देशों में महिलाओं को मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया तथा महिलाओं के राजनीतिक आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक चरण सम्पन्न हुआ। 19वीं सदी के महिला आंदोलन की 'प्रथम लहर' की सबसे बड़ी विशेषता इसका 'विश्वव्यापी' होना थी। "महिला अधिकारों की मांग केवल यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देशों-उपनिवेशों में ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य जगत के बाहर दक्षिणी अफ्रीका और एशिया में भी उभर रही थी।"[12]

प्रथम लहर के 'सफ्रैजिस्ट' आन्दोलन के बाद उत्साही महिलाओं की गति धीमी पड़ने लगी, इसका कारण यह था कि उन्हें घर-परिवार और बाहर दोनों ही जिम्मेदारियाँ सम्भालनी पड़ रही थी। दूसरे, "महिलाओं द्वारा झेले जाने वाले विभिन्न प्रकार के शोषण की – व्यवस्था द्वारा, साथ ही, परिवर्तन कामी संगठनों द्वारा अनदेखी किए जाने के कारण ही अंशतः नारीवाद का दूसरा चरण शुरु हुआ।"[13] समाजवादी संगठनों ने महिलाओं के निजी समस्याओं को मुद्दा बनाने का विरोध किया तथा संगठन के भीतर स्त्री को उसकी परम्परागत भूमिका से जुड़े छोटे-मोटे काम दिए गए। रोज़ा लक्जमबर्ग जैसी मेधावी चिन्तक से कहा गया कि, "आपको महिलाओं के संगठन का जिम्मा दिया गया है, दूसरे बड़े मामलों में अपना सिर न खपाएँ।"[14] इस तरह उदारवादियों एवं समाजवादियों द्वारा स्त्रियों की क्षमता पर शक एवं उनकी भूमिका तथा अधिकारों की अनदेखी ने महिलाओं को अलग से आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित किया। स्त्री अधिकारों को लेकर पाश्चात्य जगत अर्थात् पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के देशों में नारीवादी आन्दोलन की 'प्रथम लहर' "उन्नसवीं सदी से गुजरती हुई बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों तक पहुँचती है। जबकि दूसरी लहर के उतार-चढ़ाव 1960 से आज तक जारी हैं।"[15]

---

[11] वही, पृ.28

[12] अनुपमा राय, पश्चिम में समकालीन महिला आंदोलन (लेख) नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुददे, पृ. 106

[13] वही, पृ.29

[14] मल्लिका सेन गुप्त, स्त्री लिंग निर्माण, पृ.17

[15] अनुपमा राय, पश्चिम में समकालीन महिला आंदोलन (लेख) नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुददे, पृ. 105

वास्तव में, नारीवादी आन्दोलन की दूसरी लहर के बीज प्रथम लहर और दो विश्वयुद्धों के कारण उत्पन्न हुई परिस्थितियों में निहित थे। 1920 से 1960 तक के अन्तराल को स्पष्ट करते हुए जर्मेन ग्रीयर कहती हैं "सीधी कार्रवाई के आनन्द के ज्वार के उतर जाने के बाद दो पीढ़ी पहले की संघर्षकारिणी महिलाएं बहुत छोटे-छोटे संगठनों के माध्यम से एकजुटीकरण के काम में लग गई, जबकि उनकी ऊर्जा की प्रमुख शक्ति युद्धोपरांत छटनियों और बीस के दशक की उन्मुक्ता के बाद झालरों, कार्सेटों और नारीत्व के पुनर्जीवन, पचास के दशक के लिंग को नियति-निर्धारक मानने के सिद्धांत से छनती-छनती लगातार छींजती, लगातार सम्मानीय बनती चली गई।"[16]

प्रथम चरण के उच्चवर्गीय चरित्र के विपरीत द्वितीय चरण की विशिष्टिता को स्पष्ट करते हुए जर्मेन ग्रीयर आगे लिखती हैं, "अब दिया जा रहा जोर दूसरी तरह का है। तब भद्र मध्यवर्गीय महिलाएँ सुधार के लिए चीख-पुकार करती थीं; अब अभद्र मध्यवर्गीय स्त्रियाँ क्रांति की पुकार कर रही हैं।"[17] यह नारीवादी आन्दोलन की दूसरी लहर का दृश्य है जब पुरुषों द्वारा स्त्रियों की उग्रता को आश्चर्य से देखा जा रहा था कि अब क्या हुआ? अब तो वोट, शिक्षा, नौकरी आदि के अधिकार दे दिए गए। गर्भपात, गर्भनिरोधक आदि के साथ ही शारीरिक संरचना के हिसाब से भी बाजार में कई सुविधाजनक वस्तुएं उपलब्ध हैं। पता नहीं, अब और क्या चाहती हैं?

निश्चय ही इसका सटीक उत्तर है, "आज़ादी, वे आज़ादी चाह सकती हैं! आँखों में आँखें डालकर देखने के बजाय देखी जा रही चीज़ होने से आज़ादी। संकोच से आज़ादी। आज़ादी मर्दों की खाई-अघाई चाहत को उकसाते रहने की जिम्मेदारी से, जिसकी नाक तले किसी भी छाती की सख़्ती या किसी भी टाँग की लम्बाई नहीं आती। आज़ादी तकलीफ़देह कपड़ों से जिनका पहना जाना मर्दों को गुदगुदाने के लिए जरूरी है। उन जूतों से आज़ादी जो हमें छोटे कदम लेने को मजबूर करते हैं, और हमारे कूल्हों को उभारते हैं। पेज़ 3 के सदा बने रहने वाले किशोर सुलभ लावण्य से आज़ादी। ... बलात्कार से आज़ादी चाहे वह इमारत बना

---

[16] जर्मेन ग्रीयर, बधिया स्त्री (अनु. मधु बी. जोशी) पृ.13
[17] वही, पृ. 14

रहे मर्दों द्वारा हमें जुबानी नंगा करने से हो, चाहे रोज़मर्रा के कामों के सिलसिले में आते-जाते टोह रखे जाने, रोके जाने, बात कहे जाने या सड़क पर पीछा किए जाने, मर्द सहकर्मियों की चिपचिपी छेड़छाड़ या बाँस के टटोलने या जिन्हें हम प्यार करती हैं उन मर्दों के परपीड़न या हमें हमारी इच्छा के विरूद्ध इस्तेमाल करने या किसी अपरिचित या अपरिचितों के दल द्वारा हिंसा से आतंकित करने या पीटे जाने से हो।"[18] सुशीला सिंह प्रथम लहर की उदारवादी 'सफ्रैजिस्टों' और द्वितीय लहर के विचारों कें फ़र्क को व्यक्त करते हुए लिखती हैं, "19वीं सदी की नारीवादियों के विपरीत द्वितीय लहर की नारीवादी स्त्री के जीववैज्ञानिक वैशिष्ट्य के आधार पर उसके लिए निर्धारित परम्परागत भूमिका को नकारती हैं।" [19]

"समकालीन नारीवादी आन्दोलन राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, लैंगिक, नैतिक नस्लीय आयामों को अपने में समाजित करने की ओर बढ़ा है।"[20]

भारत में भी 19वीं सदी के आखिरी और बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में स्त्रियों की दशा सुधारने का कार्य तेजी से हुआ। इसकी वजह चाहे समकालीन सामाजिक-सुधारवादी आन्दोलन हों या 'हिन्दूवादी', पुनरुत्थानवादी दृष्टि' या फिर अंग्रेजी शिक्षा एवं शासन का प्रभाव। वास्तविकता यही है कि इस काल के दौरान स्त्रियों में आत्मचेतना जाग्रत हुई। सुधारों के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति और भूमिका में परिवर्तन आया। समाज सुधारक एवं राजनीतिज्ञों ने स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के लिए उनका आह्वान किया। तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद गाँधी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। स्त्री केन्द्रित पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई।

भारत की आरम्भिक आंदोलनकर्ताओं में पंडिता रमाबाई, सावित्रीबाई फूले, आनंदीबाई जोशी, फ्रानना सोराबजी, रमाबाई रानाडे, रामेश्वरी नेहरू, उमा नेहरू, हुक्मा देवी, स्वर्णकुमारी देवी आदि प्रमुख थीं। जिन्होंने खुद शिक्षित होकर स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक बनाने का कार्य किया। स्त्रियों के लिए समान शिक्षा की मांग की गई। स्वाधीनता आन्दोलन के समय नारी-प्रश्न 'गौण' हो गए।

---

[18] वही, पृष्ठ–15

[19] सुशीला सिंह, फेमिनिज़्म : थ्योरी, क्रिटिसिज्म, एनालिसिस, पृ.20

[20] मालती सुब्रहमण्य, उदारवादी नारीवाद (लेख), नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुददे, पृ. 21

लेकिन, एक तथ्य यह भी है कि भारतीय स्त्री को 'मताधिकार' एवं सार्वजनिक भूमिका निभाने जैसे मुद्दों के लिए अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। परिस्थितिवश, ये अधिकार उन्हें स्वयं प्राप्त हो गए। स्वाधीन भारत के संविधान ने उन्हें पुरुषों के समान राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार प्रदान किए। पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री-कल्याण योजनाओं और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया।

स्वाधीनता आन्दोलन के समय से अब तक विकसित हुए शहरी मध्यवर्ग ने अपनी बेटियों को बेटों के समान विभिन्न शिक्षण संस्थानों एवं रोजगार के क्षेत्रों में जाने की छूट दी। शहरी परिवेश में परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारना भी स्त्री को घर से बाहर जाकर नौकरी करने का कारण बना। इस सुशिक्षित एवं आधुनिक स्त्री ने हर स्थिति को तार्किकता के तराजू पर तौला और अपनी स्थिति तथा भूमिका को समाज एवं व्यवस्था में तलाशा। स्त्रियों को संगठित करने में समय-समय पर होने वाले सामाजिक सुधार आन्दोलनों का भी योगदान रहा है। प्रत्यक्ष तो नहीं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री प्रश्न इन आन्दोलनों में स्वतः जुड़ते गए हैं। 1971-72 में शुरु हुए नशा विरोधी आन्दोलन में पत्नी की पिटाई का विरोध जैसी बातें ख़ुद-ब-ख़ुद शामिल हो गईं। इसी तरह चिपको आन्दोलन, जे.पी. आन्दोलन आदि में भी स्त्री प्रश्न उठते रहे। गैर-सरकारी संगठनों ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

असंगठित क्षेत्र की औरतों के हितों की रक्षा हेतु इला भट्ट ने 'सेवा' की स्थापना की। "जब कोई समुदाय अपने सामुदायिक उत्पीड़न को समझ जाता है और उत्पीड़न को अपने आंदोलन के माध्यम से व्यक्त करने लगता है तो एक न एक दिन ऐसी स्थिति अवश्य आ जाती है कि वह लिंग आधार पर किए जाने वाले उत्पीड़न के विरूद्ध प्रश्न उठाने लगता है।"[21] समय-समय पर दहेज एवं बलात्कार तथा सभी प्रकार की यौन हिंसा के विरूद्ध होने वाले आन्दोलनों के विषय में यह बात बिल्कुल सच है।

तमाम बदलावों के बाद भी समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता में बदलाव न आने के कारण आधुनिक स्त्री की समस्याएं भी बढ़ी हैं। मध्यवर्गीय स्त्री प्रायः घर

---

[21] राधाकुमार, स्त्रीसंघर्ष का इतिहास, पृ.210

भी संभालती है और बाहर भी। प्रायः तो उसकी कमाई पर भी उसका हक नहीं होता। "उच्च शिक्षित, कामकाजी स्त्री 'सोसायटी वूमेन' के रूप में पुरुष के लिए समाज में अपनी प्रतिष्ठा दिखाने का साधन बन गई है। परन्तु घर की कुलवधू की छवि पुरुष को अब भी प्यारी है। स्त्री दोनों छवियों में जीती, द्वन्द्व झेलती है। कामकाजी स्त्री की बदली हुई भूमिका तो स्वीकार की गई है, लेकिन पत्नी की बदली हुई भूमिका नहीं स्वीकार की गई है।"[22]

पितृसत्ता ने स्त्री को बंदिनी बनाने के लिए धर्म को एक प्रमुख तत्व के रूप में इस्तेमाल किया है। इसी क्रम में दूसरा स्थान आता है परम्परा का। स्त्री को कैद करने की कठोर बेड़ियों पर वह परम्परा का कोमल मुलम्मा चढ़ाती है। वैदिक ग्रंथों, पुराणों, स्मृतियों और साहित्य हर जगह पुरूष ने स्त्री को नियंत्रित करने हेतु नियम बना रखे हैं। स्त्री और शूद्र दोनों से शिक्षा का अधिकार छीनने के पीछे उनके प्रतिरोध और स्वर को सदा के लिए दबाने की साजिश निहित है। किन्तु जन्म से ही दासता के लिए अभिशप्त इन शोषितों, वंचितों ने सदैव ही किसी न किसी रूप में पितृसत्ता के प्रति विद्रोह किया है। मध्यकाल में मीरा से पहले भी छठी शताब्दी में बौद्ध थेरियों का प्रतिरोध पितृसत्ता के प्रति बना रहा। जब से पितृसत्ता शुरु हुई, औरतों ने उसका विरोध भी शुरु कर दिया कि मेरे लिए यही एक रास्ता नहीं वरन् और भी रास्ते हैं।"[23]

हालाँकि भारत में पाश्चात्य देशों के समान स्त्रीत्ववादी विमर्श का एक सुगठित ढाँचा और एजेण्डा तैयार नहीं हो पाया है। सम्भवतः इसका एक प्रमुख कारण भारत का लम्बे समय तक उपनिवेश बने रहना है। दूसरे, यहाँ सामाजिक-आर्थिक विषमता और सांस्कृतिक विविधता के कारण यह कार्य अत्यंत कठिन है। यहाँ जाति व्यवस्था के कारण भी स्त्री के कई वर्ग, जाति, स्तर बंटे हुए हैं। स्त्री आरक्षण के मुद्दे पर यह बात स्पष्ट रूप से सामने आई जब पितृसत्ता के रक्षक पुरुषों ने एक नई चाल चली और स्त्रियों को अगड़ो-पिछड़ों में बाँटने की बात की। नतीजा, अभी भी यह बिल ठण्डे बस्ते में पड़ा है। 15वीं लोक सभा में पुनः इस बिल

---

[22] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृ.94

[23] उमा चक्रवर्ती, इतिहास निर्माण में विवादी स्वर, जनमत, वर्ष 25, अंक'–2, पृ.10

पर चर्चा छिड़ने पर फिर से तीव्र विरोध सामने आया। कुछ नेता तो ज़हर खाने तक की धमकी देने लगे।

इस स्थिति को देखकर सहज अनुमेय है कि तमाम संवैधानिक अधिकारों के बावजूद हमारे देश में स्त्री क्यों इतनी दीन-हीन और शोषित है। चन्द्रकांता इसे "नए तरह के सामंतवाद में घिरने"[24] के रूप में देखती हैं। ज्ञान के प्रसार एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री को अपने और 'आधी दुनिया' के अधिकारों के प्रति मुखर बनाया है। पारिवारिक-सामाजिक शोषण के खिलाफ अब वह मुखर होने लगी है। साहित्य में भी इस मुखरित स्वर की अनुगूँजें सुनाई देने लगी हैं।

स्त्री अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि व्यापक जागरूकता अभियान छेड़ा जाए और समाज की मानसिकता में बदलाव का प्रयास किया जाए। तब ही स्त्री अपने साथ-साथ अन्य शोषितों-वंचितों के मानवाधिकारों और वास्तविक आज़ादी को प्राप्त कर सकेगी। परिस्थितियों की जटिलता के कारण हमारे देश में परिवर्तन की गति समय के हिसाब से धीमी है, किन्तु सार्थक बदलाव धीर-धीरे ही संभव है। जब तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था और परिवार एवं विवाह जैसी उसकी 'सहसंस्थाओं' को नहीं बदला जाता, परिवर्तन की चाह मृगतृष्णा ही है।

कानूनों को लागू करने हेतु सामाजिक स्वीकृति एवं अनिवार्यता जरूरी है। आज भी प्रेम विवाह करने वाली स्त्री और कभी-कभी पुरुष को भी भरी पंचायतों में जिन्दा जला दिया जाता है। ऐसे समय में कहाँ चले जाते हैं हमारे नैतिक मूल्य और उनके संरक्षक? आए दिन समाज में दलित एवं आदिवासी स्त्रियों के गैंगरेप और उन्हें नंगा करके घुमाए जाने की खबरें अखवारों में छपती रहती हैं। क्यों इसके विरोध में आज तक कोई गंभीर आंदोलन नहीं हुआ? क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री एक वस्तु है, पुरुष की निजी सम्पत्ति। अतः उसका यौन-शोषण शत्रुता निभाने या सबक सिखाने का कारगर तरीका रहा है।

आधुनिक स्त्री घर से बाहर निकली जरूर है लेकिन न जाने कितने डरावने विचार उसके मन में हर क्षण कौंधते रहते हैं। घर आज भी स्त्री के लिए सबसे बड़ा सुरक्षा केन्द्र बना हुआ। कारण भी है, सौ गिद्धों और चीलों की निगाहों से बचने के

---

[24] चन्द्रकांता, स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य, आजकल, मार्च 2008, पृ.17

लिए एक पुरुष की प्रताड़ना सहना ज्यादा आसान है। 'आवासयी सुविधाओं के अभाव में स्त्रियाँ दूसरे शहर जाकर नौकरी करने के बजाय नौकरी छोड़ ही देती है। शिक्षित कामकाजी स्त्री के जीवन में विवाह एवं परिवार से जुड़े मुद्दे भी नई समस्याएं पैदा कर रहे हैं।

1.2 पितृसत्ता, परिवार एवं विवाह संस्था

प्रथम चरण की उदारवादी नारीवादियों के विपरीत द्वितीय चरण (1960 से अबतक) की रेडिकल एवं समाजवादी नारीवादियों ने स्त्री-उत्पीड़न के बीज 'लिंग-भेद पूर्ण' 'सामाजीकरण' में खोजे। उन्होंने देखा कि प्रथम चरण के नारीवादियों द्वारा सैद्धान्तिक तौर पर समानता हासिल कर लेने के बाद भी स्त्री के प्रति सामाजिक सोच एवं उसकी पारम्परिक भूमिका में कोई बदलाव नहीं आया। द्वितीय चरण की नारीवादियों ने "लैंगिक उत्पीड़न, श्रम के लैंगिक विभाजन और आर्थिक वर्गीय ढाँचे में आपसी रिश्ते"[25] की खोज बीन की। इस चरण में स्त्री को अधीन बनाने वाले तत्वों को चिन्हित एवं परिभाषित करके इसे 'पितृसत्ता' का नाम दिया गया।

कह सकते हैं कि, पितृसत्ता महिलाओं का अधीनीकरण करने वाली 'जटिल संरचना' या व्यवस्था है। गर्डा लर्नर पितृसत्ता को परिभाषित करते हुए लिखती हैं, "पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुष के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप में महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है।"[26] पितृसत्ता द्वारा समाज में स्त्रियों पर पुरुषों के नियंत्रण को समझने क लिए 'पैतृकवाद' और पैतृकवादी आधिपत्य' की अवधारणाओं को जानना जरूरी है।

"एक प्रभुत्वशाली समूह और अधीन समूह के बीच संबंध को पैतृकवाद तब कहा जाता है, जब वर्चस्व को परस्पर दायित्वों और एक-दूसरे के अधिकारों के माध्यम से मंद (Mitigate-धुँधला) कर दिया जाता है।"[27] अन्य स्थानों की तरह, भारत में भी पैतृकवाद अत्यंत सफल रहा है। स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्र भारत में समाजसुधारकों एवं चिन्तकों ने इसे बलपूर्वक आरोपित किया है। इस व्यवस्था में अधीन समूह अपनी अधीनता के बदले में 'पितृवत् संरक्षण' और 'अवैतनिक श्रम' के बदले में 'भरण पोषण' प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

---

[25] ज़िल्लाह आइंसटीन का वक्तत्व 1779, नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुददे, पृ.27
[26] वही, पृ.3
[27] नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे, पृ.2

पितृसत्ता–पैतृकवाद–प्रभुत्वशाली समूह ——अधीन समूह

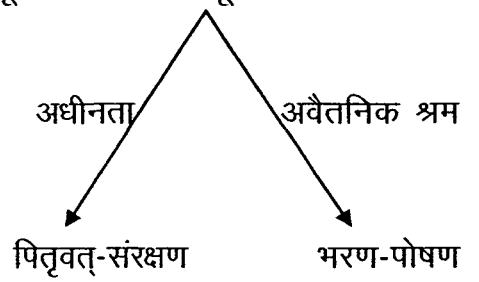

पैतृकवाद के बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि "अधीन सदस्यों को यह यकीन दिलाया जाता रहे कि उनका संरक्षक ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति है जो उनकी जरूरत की पूर्ति करता है।"[28] पितृसत्तात्म्क परिवार व्यवस्था इसी विश्वास पर टिकी है। "महिलाओं की अधीनता मूलतः परिवार की संरचना के भीतर पैतृकवादी वर्चस्व के रूप में ही अभिव्यक्त होती है।"[29]

पुलिस कोर्ट, कचहरी और लम्बी न्यायिक प्रक्रिया के कारण स्त्री खुलकर अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने से कतराती है। दूसरे अपने ही संबंधियों के विरूद्ध खड़े होने पर उसक सामाजिक रूप से लानत-मलालत का सामना करना पड़ता है। 'पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार विषयक कानून पर समाज में यह स्थिति देखी जा सकती है। बदलाव की स्थिति को देखी जा सकती है (दहेज के विरोध में कई लड़कियों ने साहसिक निर्णय लिए तथा वर पक्ष के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की है)

'पितृसत्ता' स्त्रियों पर पुरुषों के वर्चस्व को निर्धारित करने वाली 'सामाजिक संरचना और क्रियाओं' की एक व्यवस्था है। निजीसम्पत्ति एवं उत्तराधिकारी की अवधारणा के उदय के साथ ही पुरुषों ने स्त्रियों की यौनिकता को नियंत्रित करना शुरु किया। ताकि वे स्वरक्त सन्तान को उत्तराधिकारी बना सकें। पुरुष से उत्ताराधिकार भी पुरुष को ही प्राप्त हुआ। एंगेल्स इसे स्त्री की 'ऐतिहासिक हार' के रूप में देखते हैं। स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने के लिए ही एकल विवाह और परिवार की अवधारणा का विकास हुआ।

---

[28] वही, पृ.4
[29] वही, पृ.4

यौनिकता के साथ ही पुरुष ने स्त्री के श्रम पर भी नियंत्रण स्थापित किया और स्त्री की आजादी को सीमित किया। इसके लिए ऐसी परम्पराओं और रीति-रिवाजों का सहारा लिया गया जो स्त्री को घर की चारदीवारी या अन्य 'परिभाषित दायरों' में बाँध देते हैं। 'यौन पावित्र्य' की अवधारणा इसी तरह की परम्परा और विश्वास है। "पितृसत्ता के तहत स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण के अलावा उसकी पुरुषों के तहत् अधीनता से पुरुषों को उसकी उत्पादक या श्रम शक्ति पर नियंत्रण की क्षमता भी प्राप्त हो जाती है। घर के भीतर और बाहर स्त्रियों की उत्पादकता पर पुरुषों का नियंत्रण रहता है और यह फैसला भी उन्हीं के हाथ में रहता है कि वे घर के बाहर ज़ाकर काम करेंगी या नहीं।"[30]

सिल्विया वैल्वी के अनुसार "पितृसत्ता सामाजिक ढाँचों और रिवाजों की एक व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत पुरुष स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं।"[31]

भिन्न-भिन्न कालखण्डों में सामाजिक व्यवस्थाएं आवश्यकतानुसार पितृसत्ता के 'नए रूप' सामने लाती हैं "जिसके तहत् सामाजिक, सांस्कृतिक रिवाजों में फ़र्क हो सकता है लेकिन उसके बनियादी सिद्धांत वही रहते हैं –औरत का दमन, शोषण और नियंत्रण।"[32] औरत की यौनिकता से लेकर उत्पादन (श्रम) शक्ति, प्रजनन शक्ति, गतिशीलता और आर्थिक संसाधनों पर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से पुरुषों का अधिकार एवं नियंत्रण रहता है। विवाह, परिवार, धर्म, कानून तथा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं पर सामान्य तौर पर पितृसत्ता काबिज़ है।

औरत को अपने अधीन करने के लिए पितृसत्ता जैविक निर्धारणवाद का सहारा लेती है। स्त्री के मन में कूट-कूट कर यह विचार (संस्कार) भर दिया जाता है कि उनकी शारीरिक संरचना घरेलू भूमिकाएं निभाने एवं बच्चे पैदा करने के लिए ही अनुकूल है। परिवार संभालना और बच्चे पैदा करना ही उनकी मुख्य भूमिका है। वे पुरुषों से हीन और उनके अधीन हैं। 'सेक्स' शब्द पुरुष और स्त्री के बीच जैविक अन्तर को दर्शाता है, जबकि 'जेण्डर' को संबंध 'उसके साथ जुड़े सांस्कृतिक अर्थों' से है। "महिलाओं की अधीनता को मोटे तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच जैविक फर्क के

---

[30] वही, पृ.3
[31] कमला भसीन, निगहत सईद खान, नारीवाद क्या है, पृ.4 पर उद्धृत
[32] वही, पृष्ठ.4

आधार पर ही सही ठहराया जाता है। और तमाम उत्पीड़नों को कुदरती या प्राकृतिक कह कर जायज़ ठहराया जाता है। इस तर्क के अनुसार, जो कुदरती है, वह अपरिवर्तनीय है लिहाजा जायज़ है। इस प्रकार के तर्क को 'जैविक निर्धारणवाद' (जैविक संरचना के फर्क के आधार उत्पीड़न को जायज़ ठहराना) कहा जाता है।"[33] जबकि आधुनिक (द्वितीय चरण) नारीवादियों का मानना है कि 'जेण्डर' सांस्कृतिक संरचना से जुड़ा है। भिन्न सामाजीकरण इसके मूल में निहित है, जिसके तहत जनम से स्त्री ओर पुरुष में भेद-भाव किया जाने लगता है और उनकी अलग-अलग तरीके से परवरिश की जाती है।

विवाह एवं परिवार संस्थाओं को भी पितृसत्ता अपने निहित स्वार्थों के लिए इस्तेमाल करती है। स्त्री की यौनिकता, प्रजनन शक्ति और श्रम पर स्थायी नियंत्रण के लिए विवाह संस्था का आविर्भाव हुआ। उत्तराधिकार के विचार ने स्त्री को 'यौन पावित्र्य' के मिथक में जकड़ा। इसके लिए स्त्री का पुरुष द्वारा निर्मित चौहद्दियों में रहना जरूरी था। अतः विवाह एवं परिवार संस्था का निर्माण किया गया। विवाह एवं परिवार एक दूसरे के पूरक हैं। विवाह के द्वारा ही स्त्री पर पुरुष का एकाधिकार सुनिश्चित होता है इसी के माध्यम से स्त्री परिवार की हदों में कैद की जाती है। "परिवार जो समाज की बुनियादी इकाई है, शायद सबसे अधिक पितृसत्तात्मक है। परिवार के भीतर वही औरत की यौनिकता, मेहनत, उत्पादन, प्रजनन और गतिशीलता पर नियंत्रण रखता है। यहाँ यह भी समझ लें कि काफी हद तक मुखिया परिवार के छोटे लड़कों/मर्दों पर भी नियंत्रण रखता है, लेकिन अनेक नियंत्रण सिर्फ औरतों पर लागू होते हैं। दूसरी बात यह है कि इस पदानुक्रम में पुरुष सदैव ऊपर होता है। आज के लड़के कल मुखिया बनेंगे जबकि औरतें इस पदानुक्रम में हमेशा मर्दों से नीचे रहती हैं। इसमें पुरुष बेहतर हैं, दबावकारी हैं, औरतें गिरी हुई और दबी हुई हैं।

"[34]जन्म से ही लड़के और लड़की को उनकी भिन्न जैविकता के कारण सांस्कृतिक रूप से अलग-अलग भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाता है। समाजिक

---

[33] निवेदिता मेनन, नारीवादी विचारधारा में सेक्स/जेण्डर विभेद (लेख), नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुददे, पृ.8.

[34] कमला भसीन, निगहत सईद खान, नारीवाद क्या है, पृ.6

व्यवस्था और उसके विभिन्न घटक (संस्थाएँ और उनके क्रियाकलाप) इस भिन्न सामाजीकरण की प्रक्रिया में सहायक हैं। "माता-पिता, अध्यापकगण, खिलौनों के निर्माता, और बच्चों की किताबों के लेखक लड़कियों को 'जनानी' (औरतपन) और लड़कों को मर्द (पुरुष) बनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।"[35] मल्लिका सेनगुप्त का भी मानना है 'सचेतन' या 'अचेतन' रूप से प्रायः हर कोई 'असमानतापूर्ण समाजीकरण' अथवा 'कंडीशनिंग' में सहायता करता है। (मल्लिका सेन गुप्त, स्त्री लिंग निर्माण, पृ-21)

बचपन से ही लड़कों और लड़कियों में भिन्न प्रकार की आदतों के विकास को प्रोत्साहित किया जाता है। सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया के तहत् ही लड़कों में बहादुरी, आत्मविश्वास जैसे पौरुषीय गुणों तथा लड़कियों में शर्मीलापन एवं संकोच जैसे स्त्रैण गुणों का विकास किया जाता है। सामाजिक बदलावों और विकास के बाद भी समाज की सोच में आम तौर पर कोई बदलाव नहीं आया है।

पितृसत्ता और उसकी संस्थाओं के स्वरूप एवं प्रकृति को जान लेने के बाद इन संस्थाओं के भीतर आधुनिक स्त्री की जटिल स्थिति को समझा जा सकता है। पाश्चात्य जगत में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की स्थितियों, सामाजिक बदलावों और '60 के दशक की यौनक्रान्ति (गर्भपात का अधिकार, गर्भनिरोधक साधनों की खोज तथा अन्य तकनीकी विकास) ने स्त्री की स्थिति को तेजी से परिवर्तित/प्रभावित किया है। 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और 1975-85 अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक के रूप में मनाया गया। स्त्रियों की दशा सुधारने हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं सदस्य देशों ने कई प्रयास किए। भारत भी इस दिशा में पीछे नहीं रहा। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक रूप से सशक्त एवं स्वनिर्भर बनाने की दिशा में कई प्रयास किए गए। शिक्षा को उनके विकास हेतु हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया। आज शैक्षणिक क्षेत्र के हर कोने में स्त्रियाँ मौजूद हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में नारी के व्यक्तित्व के विकास और उनकी शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता रहा है। अनेक कमीशन एवं समितियों के माध्यम से नारी

---

[35] सुशीला सिंह, फेमिनिज़्म : थ्योरी, किटिसिज़्म, एनालिसिस, पृ.20 "Parents, teachers, toy manufacturers and writers of children's books encourage girls to be feminine and boys to be masculine."

शिक्षा हेतु सुझाव प्रस्तुत किए गए। "विश्वविद्यालय समिति, नारी शिक्षा की राष्ट्रीय समिति (अध्यक्ष दुर्गाबाई देशमुख), स्त्री शिक्षा सार्वजनिक सहयोग समिति, कोठारी कमीशन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति परीक्षण समिति (आचार्य राममूर्ति), केन्द्रीय सलाहकार समिति आदि ने अपनी रिपोर्ट और सुझावों में नारी शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार और उसकी गुणवत्ता सुधाने के लिए बहुमूल्य दिशा-निर्देश दिए।"[36] स्त्रियों को शिक्षा एवं रोजगार की ओर आकर्षित करने हेतु अनेक 'प्रेरणादायक', फायदेमंद सुविधाएं मुहैया कराई गईं। स्त्रियों की दशा में जो सुधार आया है, वह उनकी लगन और संघर्षशीलता के साथ-साथ इन प्रयासों की भी देन है।

किन्तु सच्चाई यह भी है कि, तमाम कोशिशों के बावजूद आम स्त्री की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। क्योकि नियमों, कानूनों और योजनाओं के निर्माण के बावजूद सामाजिक संरचना और सोच मूल रूप से 'पितृक संस्कारों' की गिरफ्त में फँसी हुई है। जो स्त्री संघर्ष करके आगे बढ़ रही है वह 'विशिष्ट' स्त्री है। उसमें अपनी क्षमताओं का उपयोग करने की हिम्मत एवं आत्मविश्वास और व्यवस्था से लड़ने का माद्दा है।

ऐसी स्त्री के समक्ष समस्याएं और भी ज्यादा जटिल हुई हैं। अपने आपको साबित करने की जद्दोज़हद में यह स्त्री अपनी परम्परागत भूमिका के साथ ही 'कैरियर' को भी संभाल रही है। वह घर और बाहर के बीच तनी एक पतली रस्सी पर कदम रख कर चल रही है। घर-परिवार में उसकी भूमिका पूर्ववत् है और बाहर अपने आपको साबित करने के लिए उसे जी-जोड़ मेहनत करनी पड़ रही है। उसे अपने आपको पुरुष के समान क्षमतावान साबित करना पड़ता है। पुरुष के अहं के कारण उसे घर के भीतर भी तनाव झेलना पड़ता है। शिक्षित, कामकाजी स्त्री परिवार मे प्रायः अकेली हो जाती है

आर्थिक हैसियत सम्पन्न स्त्री को ज्यादा शक और तिरस्कार से देखा जाता है। उसे साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी तरह से कब्जे में रखने की प्रवृत्ति घर से लेकर बाहर (कार्यालय, दफ्तर में या आने जाने के रास्तों पर) तक समान भाव से मौजूद है। कारण यह है कि, आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री धीरे-धीरे सामाजिक-

---

[36] डॉ. सुशीला गुप्ता, जरुरत है ऐसी शिक्षा की जो जीवन जीवन सिखाए, (लेख) इक्कीसवीं सदी की ओर (सं.) डॉ. सुमन कृष्णकांत पृ. 71

राजनीतिक स्तरों पर भी स्वतंत्रता एवं परिवर्तन की माँग करेगी और नीति निर्धारण में अपनी हिस्सेदारी चाहेगी। पितृसत्ता की यांत्रिक प्रणाली के यह कभी मान्य नहीं होगा। "घर और बाहर से जुड़े फैसलों में स्त्री की भागीदारी आज भी भारतीय समाज में एक दूर का सपना है। हालाँकि स्त्री ने जैसे-जैसे आर्थिक स्वतंत्रता की सीढ़ियाँ चढ़ना आरम्भ किया है, उसे फैसलों में छोटी.मोटी भागीदारी मिलनी शुरु हुई है। लेकिन फैसले सुनाने का आदी पुरुष कभी भी स्त्री को यह हक देने को तैयार नहीं है। वह स्त्री को केवल और केवल आदेशपालक की भूमिका में देखना चाहता है। ऐसे में स्त्री की ओर से आया कोई भी फैसला उसे अपनी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह-सा ही लगता है।[37]

'90 के दशक में भूमण्डलीकरण और उदारीकरण ने कई अन्तर्विरोधों के बावजूद सभी वर्ग की स्त्रियों के लिए आर्थिक स्वनिर्भरता के दरवाजे खोले हैं। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में सामाजिक परिवर्तन की गति 'सर्वाधिक तीव्र' रही है। "स्त्री ने अपने लिए जहाँ अब तक के वर्जित क्षेत्रों में अपनी ठोस दावेदारी प्रामाणित की, वहीं आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में भी तीव्र प्रयास सामने आए हैं और उनके परिणाम भी। आर्थिक स्वावलम्बन ने स्त्री को कई अर्थों में बदलने में मद्द की। गर्भनिरोधकों की निर्मिति और गर्भपात के अधिकार ने स्त्री को आतंकित रहने से मुक्ति दी। राजनैतिक आरक्षण के प्रश्न ने स्त्री को केन्द्र में आने में मद्द की। नए वैज्ञानिक शोधों ने स्त्री की दोयम दर्जे की भूमिका को नकारा। इस नई स्त्री ने जीवन और पारम्परिक समाज व्यवस्था में परिवर्तन के संकेत दिए हैं। जिनका असर सामाजिक सम्बंधों पर पड़ा है।"[38]

हालाँकि परिवर्तन की प्रक्रिया पहले से ही चल रही थी किन्तु 'परिवर्तनों के परिणामें की तीव्रता' अन्तिम दशक में उभर कर सामने आई है। पहले के दशकों के विपरीत आज की स्त्री अपनी निजी पहचान बनाने, अपनी उच्च शिक्षा एवं क्षमताओं का उचित इस्तेमाल करने, आत्मसंतोष और स्वनिर्भरता के लिए रोजगार एवं व्यवसायों से जुड़ रही है। अब वह विवाह के स्थान पर 'कैरियर' को अधिक महत्व देती हुई देखी जा सकती है। विवाह के बाद भी वह अपना 'कैरियर' छोड़ना नहीं

---

[37] गीताश्री, स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, पृ.24

[38] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां , पृ. 18

चाहती। लेकिन, पितृसत्तात्मक संस्कारों की जकड़न में कैद ज्यादातर माता-पिता या तो उचित वर की प्राप्ति हेतु लड़कियों को शिक्षा दिलवाते हैं या फिर विवाह होने तक समय काटने के लिए। आज भी ज्यादातर स्त्रियों का प्रमुख 'कैरियर' विवाह एवं मातृत्व ही है। कई सर्वेक्षण बताते हैं कि ज्यादातर स्त्रियाँ विवाह पश्चात् ससुराल वालों की मर्ज़ी से नौकरी करती या छोड़ती हैं। यदि वे अपनी मर्ज़ी चलाना चाहती हैं तो स्थिति तलाक तक भी पहुँच सकती है।

वास्तविकता यह है कि, स्त्री की भूमिका और स्थिति तो बदली है लेकिन घर-परिवार और समाज में उससे परम्परागत भूमिका निभाने की उम्मीद सर्वोपरि है। स्त्री कितनी ही उच्चशिक्षित, क्षमतावान और ऊँचे पद पर क्यों न हो, घर के भीतर वह पुरुष की यौनदासी और उसके घर तथा बच्चों की सार-सँभाल करने वाली आया/नौकरी से अधिक कुछ नहीं। पुरुष अपने खाँचों में फिट होने वाली औरत को तो देवी का तमगा और सम्मान देता है और अपनी शर्तों पर जीने वाली स्त्री को 'चरित्रहीन' कहकर उसे उसकी औकात बता देता है। इन सामाजिक दबावों को झेलते-झेलते प्रायः स्त्रियाँ कुण्ठा, अवसाद और हीनता बोध की शिकार हो जाती हैं। आज कामकाजी स्त्री में मानसिक रोगों की तादाद बढ़ रही है। जिसके पीछे कारण शुद्ध पितृसत्तात्मक हैं। 'परिवार' और समाज को हमारे यहाँ सबसे पवित्र और 'स्वाभाविक' संस्थाओं में शुमार किया जाता है। 'मानसिक सुरक्षा, भौतिक सहायता, देखभाल, अपनत्व, हैसियत, वैधता और सामाजिक पहचान' प्रदान करने वाली इन संस्थाओं के बारे में स्त्रियों के अनुभव एक नया सच बयान करते हैं।

महिलाएँ, चाहे वे जवान या या बूढ़ी, पढ़ी-लिखी, नौकरी पेशा हों या अपढ़, घरेलू "उनके ठोस अनुभव बताते हैं कि परिवार, घर-बार और समाज कुल मिलाकर गैर बराबरी, दबाव/वर्जना, उत्पीड़न और हिंसा के दायरे रहे हैं और आज भी हैं। जिनमें स्त्री-पुरुष भेद, जेण्डर और उम्र द्वारा निर्धारित हित और सत्ता संबंध अन्तर्निहित होते हैं।"[39] विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े की पुस्तक 'भारतीय विवाह संस्था का इतिहास' का सार भी यही है कि अल्तेकर महोदय की अवधारणा के विपरीत, वास्तव में, वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय स्त्री की

TH-17876

[39] रजनी पालड़ीवाला, समकालीन भारत में परिवार संरचना (लेख), नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुददे, पृ.176

दशा हमेशा पुरुष से दोयम दर्जे पर रही है। भारतीय नारी की 'गरिमामयी, वात्सल्यमयी' देवी-छवि तो इतिहास की राष्ट्रवादी विचारधारा की देन है।

आज, जब आधुनिक स्त्री एक नई मुद्रा में पितृसत्ता और उसकी सहायक संस्थाओं से लोहा लेने के लिए खड़ी है तो उस पर कई तरीकों से दबाव बनाने का प्रयास किया जा रहा है। उसे घरफोडू' की उपाधि दी जा रही है। स्त्री अधिकारों की वकालत करने वाली औरत को पुरुष समाज अत्यंत घृणा, भय और हिकारत से देखता है। ऐसे ही लोगों को सम्बोधित करते हुए मल्लिका सेन गुप्त लिखती हैं– "नारीवाद का मतलब तलाक की झण्डाबरदारी करना नहीं, न ही दस पुरुषों के साथ हमबिस्तर होना है और न ही नारीवाद का अर्थ लेस्बियनिज्म है, न सन्तान की उपेक्षा। समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर उसे जमींदोज करना भी नहीं। नारीवाद के सही मायने सवाल खड़े करना और लगातार अनन्त सवालों की झड़ी लगाना है।"[40] सवाल स्त्री की मानवीय अस्मिता और उसके मूलभूत अधिकारों का है।

1994 को अन्तर्राष्ट्रीय परिवार वर्ष के रूप में मनाया गया। दुनिभा भर में विवाह और परिवार के टूटने के कारणों पर चर्चा हुई। सतही कारणों पर विचार के अलावा कहीं भी समाज, परिवार की मूलभूत संरचना में बदलाव की बात नहीं उठाई गई। हमारे देश में इस बहस में एक बात स्पष्ट रूप से सामने आई कि, "यद्यपि हमारे यहाँ तलाकों की संख्या अत्यंत सीमित है, लेकिन दाम्पत्य संबंधों में बिखराव और कटुता के मामले पिछले दो दशकों में अनपेक्षित रूप से बढ़े हैं। औरतों की आजादी और उनकी समानाधिकारों की माँग ने दाम्पत्य संबंधों के पारम्परिक ढाँचे को तोड़ दिया है। महिलाएं अब पति के गलत व्यवहार को चुपचाप सहन नहीं करतीं। आर्थिक स्वतंत्रता ने उनमें एक प्रकार की सुरक्षा और आत्म सम्मान की भावना को जन्म दिया है, जो हमारे पुरुष प्रधान समाज में अहं के टकरावों का कारण बन गई है। आपसी समझ की भावना के अभाव में छोटी-छोटी समस्याएं भी विकराल रूप धारण कर पति-पत्नी के परस्पर संबंधों में ज़हर घोलने लगी हैं।"[41]

---

[40] मल्लिकासेनगुप्त, 'स्त्री लिंग निर्माण, पृ.17

[41] उषा महाजन, विवाहः पवित्र बंधन या बेड़ी (लेख), स्त्री, परम्परा और आधुनिकता (सं.)राजकिशोर, पृ. 113

विडम्बना यह है कि, घर टूटने या रिश्तों में दरार के लिए हमारे समाज में स्त्री ही जिम्मेदार ठहराई जाती है। हर कोई उसी से समझौते करने की उम्मीद करता है। बचपन से लेकर मृत्यु तक उसे सहनशीलता, आत्मत्याग और परनिर्भरता का पाठ पढ़ाया जाता है। लेकिन, 'आधुनिक स्त्री' को दबाव डालकर या लालच देकर पालतू नहीं बनाया जा सकता। सामाजिक संरचना में बदलाव के बिना स्थिति में बेहतरी की उम्मीद नहीं की जा सकती। आखिर हर बार वही क्यों टूटे? हिन्दी साहित्य में भी इस प्रश्न को लेकर लगातार बहसे जारी हैं।

समाज में तलाक के मामले दिनो-दिन बढ़ रहे हैं। बच्चे और बुजुर्ग बेसहारा हो रहे हैं। स्त्री दिनों-दिन 'बुरी' होती जा रही है! परिवार के भीतर स्त्री यातना सहने को अभिशप्त है। कहीं-न-कहीं बच्चों की वजह से हमारे समाज में 'स्त्री हद से बाहर' बर्दाश्त करती रहती है। "विवाह पूर्व वजूद को शीघ्रता पूर्ण नकारता हुआ नए परिवेश में सामजस्य स्त्री से अपेक्षा करता है कि वह अपने अतीत, अपनी अभिरूचियाँ, अपने व्यक्तित्व का तिरोभाव नए परिवेश के लिए करे।"[42] दहेज प्रथा, दहेज हत्या जैसी कुप्रथाएं अब भी स्त्री के आत्मसम्मान की धज्जियाँ उड़ाती हैं। हिन्दू समाज में विवाह 'दो परिवारों को जोड़ने वाला' माना जाता है। यह स्त्री पुरुष के सम्बंध को मान्यता प्रदान करता है। लेकिन, आज बदलती हुई परिस्थितियों में विवाह और परिवार जैसी संस्थाओं पर नारीवादी विमर्श प्रश्नचिन्ह लगाने लगा है।

पुरुषवादी मानसिकता विवाह एवं यौन पावित्र्य जैसे मुद्दों पर दोहरा रुख अपनाती है। लेकिन, महत्त्वपूर्ण यह है कि आज यदि स्त्री ने अपने लिए यौन पावित्र्य को स्वीकारा है तो पुरुष के कौमार्य को लेकर भी प्रश्न उठाए हैं। परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार विवाह संस्था के भीतर यौन संबंधों को वैध और बाहर अवैध माना जाता है। लेकिन, आज की परिस्थितियों में यह धारणा टूट रही है। 'कैरियर' के दबाव में लड़के-लड़कियाँ देर से विवाह करते हैं। महानगरों में 'लिव इन रिलेशनशिप' का चलन बढ़ा है। गर्भनिरोधकों ने स्त्री को गर्भ की चिन्ता से मुक्त किया है। फलस्वरूप, विवाह संस्था से बाहर 'स्त्री-पुरुष' के यौन सम्बंध

---

[42] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृ.136

सामान्य बात है। इस प्रकार, स्त्री ने विवाह, दाम्पत्य एवं परिवार के रुढ़िवादी प्रारूपों पर प्रश्न चिन्ह लगाया है।

आधुनिक नारीवादी परिवार के किसी स्थायी रूप को अस्वीकार करते हैं, "वे परिवार में जनतंत्र चाहते हैं, जो न तो संयुक्त परिवार में था और न एकल परिवार में ही कभी रहा। परिवार ही वह पहली जगह है, जहाँ से स्त्री-पुरुष में भेद-भाव शुरू हेाता है। अतः इस भेदभाव को समाप्त करना चाहने वाले स्त्रीवादी परिवार के इस रूप या ढाँचे को ही बदलने की बात करते है। स्त्री-पुरुष में भेदभाव का मतलब है –स्त्री पर पुरुष का आधिपत्य। इसके चलते समानता परिवार में कभी हो ही नहीं सकती।"[43]

स्त्री के लिए परिवार यातनागृह से कम नहीं हैं। सामाजिक रूप से 'सुरक्षा के केन्द्र' समझे जाने वाले घर/परिवार में स्त्रियाँ बचपन से यौन-शोषण का शिकार होती रहती हैं। वे प्रायः इतनी कुण्ठित हो जाती है कि जीवन भर अपने शोषण के खिलाफ आवाज़ नहीं उठा पातीं। संचार माध्यमों एवं स्त्री में अधिकारों की चेतना तथा महिला आयोग और अन्य महिला संगठनों के कारण अब ऐसे कुतृत्य सामने आने लगे हैं। सगे भाईयों और पिता द्वारा यौन शोषण के सैकड़ों केस अखबारों में छप चुके हैं। स्त्री को विवाह से पूर्व एवं विवाह के बाद बार-बार अपनी बदली हुई भूमिका से सामंजस्य बैठाना पड़ता है। विवाह और परिवार उसकी अनवरत सेवा के बदले में उसे थोड़ी-सी सुविधाएं भले ही मुहैया करा दें, लेकिन उनकी वर्तमान संरचना में स्त्री की अस्मिता और स्वतंत्रता का पूरी तरह नकार है।

'आदर्श' स्त्री की भूमिका निभाते-निभाते वह अपना जीवन व्यतीत कर देती है, और स्वयं के लिए कभी कुछ नहीं सोच पाती। प्रायः तो कमाऊ स्त्रियों की कमाई भी घर की जिम्मेदारियों में खर्च हो जाती है। फिर भी, नई स्त्री ने अब विवाह और परिवार बचाने के नाम पर बलिदान होने से बेहतर इनसे अलग हो जाना समझा है। जिससे सामाजिक स्तर पर अत्यंत बेचैनी व्याप्त है। दरअसल, यह स्थिति संक्रमणशील अवस्था की द्योतक है। घरों का टूटना, स्त्री-पुरुष संबंधों में दरकन और तनाव, तलाक की बढ़ती संख्या, स्त्री और पुरुष में अकेलेपन की

---

[43] सविता सिंह, परिवार की जगह (लेख), नैतिकता के नए सवाल (सं.) राजकिशोर, पृ.144

भावना – यह सब परिवर्तन के लक्षण हैं। आधुनिक चेतना सम्पन्न स्त्री व्यवस्था में बदलाव की मांग कर रही है।

"समाज के आधुनिक रूपान्तरण की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध ने भारतीय पारिवारिक ढाँचे में बनी रह गई सामंती प्रवृत्तियों को पहचाना था और यह भी कहा था कि आधुनिक चेतना-सम्पन्न परिवार समाज की सबसे बड़ी जरूरत है। आधुनिकता का अपना सार दृष्टि की वैज्ञानिकता नहीं तो और क्या है। आधुनिक मनुष्य की दृष्ट वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक होनी चाहिए। इसी के अनुरूप उसके लिए जरूरी है कि वह जीवन की अग्रगामी गतिशीलता के पक्ष में यथा स्थितिवाद के सारे सूक्ष्म-स्थूल रूपों की पड़ताल करे। "[44]

आधनिक स्त्री को मानवीय, न्यायपूर्ण और सहज सबंधों की दरकार है। इसीलिए वह सड़ी-गली व्यवस्था पर निर्मम प्रहार करने लगी है। वह व्यवस्था की रिपेयरिंग के बजाय आधुनिक मानवीय मूल्यों की नींव पर स्त्री-पुरुष संबंधों का नया व्याकरण गढ़ना चाहती है। पुराने भवन के ध्वंसावशेष पर ही नए का निर्माण संभव है। इस दिशा में वह नवीन मूल्यों और नैतिकता की खोज में रत है। केट मिलेट के अनुसार , "पितृसत्तात्मकता का प्रमुख संस्थान परिवार है।"[45] अतः पितृसत्ता की समाप्ति के लिए उसकी संस्थाओं की जड़ों पर प्रहार किया जाना अपरिहार्य है।

---

[44] चन्द्रकला त्रिपाठी, उसकी जन्नत की हक़ीकत, कथाक्रम जुलाई.सितम्बर 2007, पृ.128
[45] सरला माहेश्वरी, नारी प्रश्न, पृ.44

1.3 आधुनिक स्त्री के संदर्भ में नैतिकता का सवाल

प्रत्येक समाज एवं व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नियम-कानून परम्पराएं एवं नैतिक मूल्य बनाए जाते हैं। हर युग में मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार इनमें संशोधन और परिवर्तन करता रहता है। पुरानी नैतिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाकर नई नैतिकता का विकास एक शाश्वत प्रक्रिया है। स्त्री-पुरुष संबंधों पर विचार किया जाए तो हम पाते हैं कि "यही वह क्षेत्र है जिसके नैतिक प्रतिमान अपेक्षाकृत लम्बे समय तक स्थिर दिखाई पड़ते हैं। निश्चय ही इसका एक बड़ा कारण स्त्री की कमजोर भौतिक स्थिति की निरंतरता है। लेकिन अब ये प्रतिमान भी बहुत तेजी से बदल रहे हैं।"[46] शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों की बढ़ती आर्थिक स्वनिर्भरता एवं प्रायः सभी क्षेत्रों में उनकी दावेदारी ने परम्परागत नैतिक प्रतिमानों को कटघरे में खड़ा कर दिया है।

ऐसा नहीं है कि परम्परा में सबकुछ बेकार ही होता है, लेकिन स्त्री के संदर्भ में यह बात प्रायः सही ठहरती है। दुनिया में हर दौर की अपनी समस्याएँ एवं अन्तर्विरोध रहे हैं लेकिन 'आधुनिक समय' से पहले नैतिक मूल्यों पर इतने प्रश्नचिन्ह शायद ही कभी लगे हों।

नैतिक और अनैतिक पर विचार करते हुए राजकिशोर लिखते हैं, "मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है, इसलिए वह विषमता की सृष्टि करता है। वह स्वभाव से उदार और संवेदनशील है, इसलिए वह दूसरों की स्वतंत्रता का हरण करता है। वह स्वभाव से व्यवस्थाप्रिय है, इसलिए दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करता है। मनुष्य स्वभाव से लालची है, इसलिए वह दूसरों की चीज़ हड़प जाना चाहता है। वह स्वभाव से परदुखकातर है, इसलिए अपनी चीज देकर भी दूसरों को सुखी देखना चाहता है। इस तरह हम पाते हैं कि नैतिकता के बुनियादी मूल्य वही हैं जो मानव स्वभाव की अच्छाई को प्रतिबिम्बित करते हैं और अनैतिकता के प्रमुख रूप वे, जो मानव स्वभाव के टुच्चेपन की अभिव्यक्ति हैं।"[47]

इस दृष्टि से देखा जाए तो पुरुष समाज ने सदियों से स्त्री के लिए जो नैतिक मूल्य तय कर रखे हैं, एक मनुष्य के नाते, वे सारे उसके स्वभाव के टुच्चेपन

---

[46] राजकिशोर, नैतिकता के द्वन्द्व (लेख), नैतिकता के नए सवाल (सं.) राजकिशोर, पृ.70
[47] वही, पृ.74

की अभिव्यक्ति हैं। लेकिन क्यों? स्त्री के संबंध में ही पुरुष ने ऐसा क्यों किया? क्या इसके पीछे अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति की भावना काम कर रही थी? आज जब सारा परिदृश्य तेजी से बदल रहा है स्त्री-स्वातंत्र्य का नारा जोर पकड़ता जा रहा है, तब स्त्री से परम्परागत नैतिक मूल्यों को ढोने की उम्मीद करना बेमानी है। कोई चाहे भी तो भी यह सम्भव नहीं है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में प्राचीनकाल से ही स्त्री की नैतिकता को दो मानदण्डों पर तौला गया है– 'दैहिक शुचिता' और 'मानसिक परनिर्भरता'। इस पुरानी और अन्यायपूर्ण व्यवस्था को शुरु से ही चुनौतियाँ भी मिलती रही हैं। नैतिकता निरंतर परिवर्तनशील है। "नैतिकता कोई जन्मजात गुण नहीं है। समाज में रहकर हम इसके गुण धर्म से परिचित होते हैं। दूसरे, यह कोई निरपेक्ष मूल्य भी नहीं है। धर्म, शास्त्र, समाज, विचार, संस्कृति, आर्थिक जगत, प्रौद्योगिकी, बाजार, राजव्यवस्था, वर्ग, वर्ण सभी की सापेक्षता में यह अपना अस्तित्व ग्रहरण करती है। पुरानी और नई नैतिकता के बीच संशयबोध की अनिवार्य स्थिति मौजूद है जो समय के वस्तुगत आधारों पर पुराने का अस्वीकार और नए का स्वीकार करता है।।"[48] स्त्री के संदर्भ में पारंपरिक नैतिकता ने सामान्य रूप से दोहरा रूख अपनाया है। पुरुष के लिए जो नैतिक है वह स्त्री के लिए अनैतिक है। सारी मान-मर्यादाओं और मान-प्रतिष्ठा की रक्षा का भार स्त्री के सिर पर है।

आधुनिक युग में तर्क एवं विवेक की स्थापना के बाद स्त्री ने पुरुष द्वारा उस पर थोपे गए अन्यायों पर प्रश्न उठाया। फ्रांसीसी क्रांति के नारे 'स्वतंत्रता', 'समानता' और 'बंधुत्व' को मेरी वोलस्टनक्राफ्ट ने चुनौती दी। स्त्री सम्बंधी 'पूर्वाग्रहों' और षड्यंत्रों को चुनौती देते हुए उन्होंने कहा , "समाज में और अधिक समानता स्थापित करना अभीष्ट है, अन्यथा नैतिकता कभी अपना आधार नहीं बना पाएगी और यह सद्गुण सम्पन्न समानता दृढ़तापूर्वक जमी नहीं रह सकती, भले ही चट्टान की नींव प्राप्त हो, यदि मानव जाति का अर्धांश नियति द्वारा जकड़ी हुई रसातल में पड़ा हो, क्योंकि वे अज्ञान अथवा अहमन्यता के कारण इसकी जड़ें अनवरत खोदती

---

[48] प्रज्ञा, सामाजिक-न्याय और नई नैतिकता (लेख), नैतिकता के नए सवाल (सं.) राजकिशोर, पृ.128

रहेंगी।"[49] स्त्री के संदर्भ में समाज में समस्त नैतिक प्रतिमान उसे पुरुष के इर्द-गिर्द रखकर तय किए जाते हैं। "जहाँ तक स्त्री संबंधी नैतिकता का सवाल है, स्त्री की प्रत्येक अवस्था में एक पुरुष को उसके साथ चस्पा कर उसके जीवन के तमाम निर्णयों का उत्तरदायित्व पुरुष को सौंप कर 'वशिष्ठ धर्मसूत्र' स्त्री की स्वाधीनता छीन लेता है। वर्तमान संदर्भ में यह नैतिकता पुरानी ही नहीं, शोषणयुक्त भी दिखाई देती है।"[50]

समय का बदलाव सम्पूर्ण परिस्थितियों एवं संदर्भों का बदलाव है, और 'युग की नैतिकता' भी इन्हीं बदलावों से संचालित होती है। कभी 'असूर्यंपश्या' कहलाने वाली स्त्री आज घर की दहलीज को लाँघ कर पुरुषों से कंधा मिलाकर चल रही है। पहले जहाँ अचानक से किसी औरत के चेहरे पर से घूँघट हट जाने को अनैतिक माना जाता था, वहाँ आधुनिक स्त्री के पहनावे को लेकर नैतिकता के मानदण्ड बदले हैं। हालाँकि, अब भी जब-तब कालेजों में स्त्रियों के 'ड्रेस कोड' को लेकर बवाल होता रहता है। हाल -फिलहाल में कानपुर के कालेजों में जींस, 'स्लीवलेस' टाप, ब्लाउज और ऊँची एड़ी वाली सैण्डिल पहनने पर पाबंदी लगाई गयी, जिसका छात्राओं ने जोरदार विरोध किया। सवाल यह है कि, स्त्री के संदर्भ में प्रतिमान तय करने वाले पुरुष कौन होते हैं? उन्हें इस तरह पाबंदी लगाने का हक किसने दिया है? छः माह की बच्ची से लेकर साठ वर्ष की वृद्धा तक का शारीरिक शोषण करने वाले पुरुष समाज में स्त्री की नैतिकता को उसकी यौन नैतिकता से तय किया जाता है।

"वर्तमान भारतीय समाज में, जो मोटे तौर पर पूँजीवादी अवस्था की ओर बढ़ता हुआ सामंती समाज है, सभी क्षेत्रों में नैतिकता की धारणा रूढ़ और अविवेकपूर्ण मान्यताओं पर अधिक आधारित है, तर्क संगत मानवीय दृष्टि पर कम। यौन संबंधी नैतिकता की धारणाएँ भी इसका अपवाद नहीं है।... जब हम 'चरित्रवान'

---

[49] मेरी वोलस्टतकाफ्ट, प्रज्ञा, सामाजिक न्याय और नई नैतिकता (लेख), नैतिकता के नए सवाल, पृ. 128 पर उद्धृत

[50] प्रज्ञा, वही, पृ.129

और 'चरित्रहीन' की बात करते हैं, तो दस में से नौ बार हमारा मतलब 'यौन दृष्टि से चरित्रवान या चरित्रहीन व्यक्ति से होता है।"[51]

"किसी भी तर्कसंगत और संतुलित मानवीय नैतिक दृष्टि में, यौन नैतिकता को दस प्रतिशत से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। यदि मनुष्य के महत्त्वपूर्ण सद्‌गुणों की एक सूची बनाई जाए, तो निश्चय ही उसमें धैर्य, साहस, निर्भयता, संकल्प की दृढ़ता, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, ईमानदारी, कर्मचण्ता, सत्यनिष्ठा, अन्याय का प्रतिरोध करने की भावना, विवेकशीलता आदि अनेक गुणों के साथ उसके यौन -व्यवहार की मानवीयता को भी जोड़ा जाएगा।"[52] न कि वह किसी व्यक्ति की नैतिकता की 'एकमात्र कसौटी' होगी। परम्परागत यौन नैतिकता स्त्री को जिन कार्यों के लिए मौत की सज़ा तक दे डालती है, पुरुष को उन्हीं कार्यों को करने की मौन स्वीकृति प्रदान करती है। 'अहल्या' हो या 'सीता' कुकृत्य पुरुष करता है और सज़ा मिलती है स्त्री को।

आधुनिक स्त्री इन दोहरे मानदण्डों को स्वीकार नहीं करती। स्त्री को जन्म लेने तक के अधिकार से वंचित करने वाले इस समाज की मानसिकता को आज वह खुली चुनौती दे रही है। लेकिन पितृसत्ता और पूँजीवाद का गठजोड़ उसकी इस विद्रोह भावना को भी अपने हितों के लिए इस्तेमाल करने से नहीं चूकता। 'सेक्सवर्कर्स' का बढ़ता कारोबार इसका उदाहरण है। यदि वास्तव में, यह अन्य पेशों की तरह एक पेशा है तो पुरुषों से यह सवाल जरूर पूछा जाना चाहिए कि उनमें से कितने इन 'सेक्सवर्कर्स' से विवाह करना चाहेंगे। स्वयं विवाह पूर्व और पश्चात् भी सौ जगहों पर मुँह मारने वाला पुरुष पत्नी के मुँह से उसके विवाह-पूर्व प्रेम प्रसंग को सुनकर ही उसके खून का प्यासा हो जाता है। नयनतारा सहगल जैसी बड़ी हस्ती का वैवाहिक जीवन इसीलिए तबाह हो गया कि उन्होंने पति को अपने विवाह-पूर्व प्रेम-संबंध के बारे में बताने की ईमानदारी दिखाई। ममता कालिया का उपन्यास 'बेघर' स्त्री की यौन शुद्धता के प्रति पुरुष की जड़ मानसिकता और उसके दुष्परिणामों को अत्यंत मार्मिक ढंग से खोलता है। कमलेश्वर तो अपनी

---

[51] डॉ. रणजीत, एक मानवीय यौन नैतिकता की तलाश में (लेख),स्त्री, परम्परा और आधुनिकता (सं.) राजकिशोर पृ.136

[52] वही, पृ.136

कहानी 'राजा निर्बंसिया' में बहुत पहले ही परम्परागत नैतिकता के बरक्स नई नैतिकता की बात कर रहे थे।

आज की स्त्री देवी की पदवी छोड़कर सामान्य मानव की भाँति जीना चाहती है। घर से बाहर आकर वह ज्यादा से ज्यादा पुरुषों के सम्पर्क में आई है। अब वह एक व्यक्ति के रूप में पुरुष के सम्पर्क में आई है। स्कूल- कालेज, दफ्तर, सड़क, बसों, रेलों और अन्य तमाम सार्वजनिक जगहों पर वह पुरुष के समान मौजूद है। एक तरफ पुरुष इस नई स्त्री को देख कर हड़बड़ाया हुआ है तो दूसरी ओर उसकी स्वीकृति भी संभव हो रही है। "स्त्री-पुरुष संबंधों को नए आयाम मिल रहे हैं। ...साथ रहना, साथ-घूमना-फिरना – इस परिवेश में संबंधों के औपचारिक निर्वाह से काम नहीं चल सकता। बरबस कहीं ज़्यादा निकटता आती है। वह निकटता, जो पारंपरिक नैतिकता की परिधि से बाहर है।"[53]

जाहिर है कि, परिस्थिति, परिवेश और संबंधों में बदलाव के संदर्भ में नैतिकता के तकाजे भी परिवर्तित करने ही होंगे। परिवार के भीतर भी पुरुष को स्त्री की इस नई छवि और भूमिका को सहजता से लेना होगा। स्त्री-पुरूष सम्बंधों और स्त्री स्वातंत्र्य को केवल यौन शब्दावली में परिभाषित करना व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर गड़बड़ी फैलाएगा। आज की स्त्री पुरुष से दोस्ताना व्यवहार की माँग करती है। आर्थिक स्वनिर्भरता और यौन क्रांति ने स्त्री के तईं नैतिकता की परिभाषा को बदला है। समाज का बड़ा हिस्सा अभी तक इस नई औरत से इतना डरा हुआ है कि उसे आश्चर्य और घृणा के मिश्रित भावों से देखता है। रूपन देओल बजाज जैसी अव्वल दर्जे की अधिकारी के साथ 'पंजाब के हीरो' के.पी.एस. गिल के अभद्र व्यवहार पर पुरुष समाज की दोहरी नैतिकता देखने योग्य है। स्त्री के सबंध में पुरुष समाज पता नहीं क्यों इतना असहिष्णु है।

वास्तव में, नैतिकता के संबंध में भी लोकतांत्रिक समानता लागू करने की ज़रूरत है। आज के युग में जब बाजार, सत्ता, राजनीति हर जगह नैतिकता के नए रूप स्थापित हो रहे हैं तो, स्त्री के संदर्भ में रूढ़िवादिता क्यों? मैत्रेयी पुष्पा भारतीय समाज की स्त्री विषयक नैतिकता की धारणा को अत्यंत बेबाक ढंग से

---

[53] सुमिता, संबंधों का नया व्याकरण (लेख), स्त्री के लिए जगह, (सं.) राजकिशोर, पृ. 155

उजागर करती हैं, "भारतीय समाज में औरत की जिन्दगी उस नैतिकता से बंधी है, जिसकी डोर पिता, पति और पुत्र के हाथ में है। स्वतंत्रता बंधक है क्योंकि स्त्री को झूठी, मक्कार, धूर्त, कुटिनी और चुगलखोर माना गया है। विश्व के महान चिंतक नीत्शे फरमा गए हैं कि औरत के पास जा रहे हो तो अपना कोंड़ा साथ ले जाना मत भूलना। इसी के समर्थन में प्रतिष्ठा-शिरोमणि तुलसीदास ने मत दिया–ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी/ ये सब ताड़न के अधिकारी । ...कबीर दास ने –विकट नारी पाले परी, काटि करेजा खात कहा वात्सल्य की कोमल धारा बहाने वाले सूरदास की सुनिए – नारी नागिन एक सुभाई।"[54]

मानवता के महान लक्ष्य लेकर चलने वाले भक्ति आंदोलन का यह पक्ष स्त्री दृष्टि से विवेचना करने पर ही उजागर होता है। दरअसल स्त्री के संबंध में ये सभी सन्त महात्मा युगीन समाज की मानसिकता का चित्रण (प्रतिनिधित्व) कर रहे थे। आज जब 20 सदी गुजर चुकी है और इक्कीसवीं सदी की भोर हुई है तो इन मनुष्यता विरोधी दोहरे मानदण्डों को त्याग कर एक सहज, सरल लचीली और लोकतांत्रिक नैतिक दृष्टि के आगमन की आशा अभीष्ट है।

---

[54] मैत्रेयी पुष्पा, स्त्रीत्व की नैतिकता (लेख), नैतिकता के नए सवाल (सं.) राजकिशोर, पृ.135

1.4 समकालीन हिन्दी साहित्य में महिला लेखन के सरोकार

स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक रूप से स्त्री को पुरुष के समान अवसर और अधिकार प्राप्त हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैश्विक स्तर पर विकास की प्रक्रिया में तेजी आई। हमारे देश में नेहरु युग के अन्त के बाद एक नई तरह की आर्थिक व्यवस्था को बढ़ावा मिला। किसी देश के विकास में वहाँ के मानव संसाधनों पर विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप, 'आधी दुनिया' की स्थिति में तेजी से सुधार के प्रयास किए गए। अन्तराष्ट्रीय परिदृश्य में 'स्त्री' विमर्श के केन्द्र में आई। "समय के बदलते स्वरूप, रुचियों, परिस्थितियों के सम्मुख साहित्य एक प्रतिस्पर्धी के रूप में आता है। तेजी से बदलते समय के सापेक्ष सामाजिक स्थितियाँ, मूल्य व मान्यताएं सभी बदलती हैं। इस सहज स्वभाविक बदलाव की गति कम या तीव्र हो सकती है, कभी यथास्थिति महसूस हो सकती है, तो कभी त्वरित परिवर्तन।"[55]

इस संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण है समय एवं समाज की तात्कालिक आवश्यकता। यही वह तत्त्व है जो परिवर्तन की दशा और दिशा को निर्धारित करता है। "बदलाव के कारण, बदलाव की आवश्यकता और उसके उत्प्रेरक जितने शक्तिशाली और सुनियोजित होंगे, परिवर्तन की गति उतनी ही तीव्र होगी। ये कारक कभी बाह्य होते हैं और कभी आन्तरिक ऊर्जा भी बदलाव की दिशा में योग करती है। समाज की इन बदली हुई प्रवृत्तियों, स्थितियों, को साहित्य अपने माध्यम से अभिव्यक्त करता रहा है तो साहित्य भी कई बार सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक बन सका है।"[56] वास्तव में, साहित्य एवं समाज के बीच एक द्वन्द्वात्मक रिश्ता होता है।एक दूसरे की दिशा निर्धारित करने के लिए इन दोनों के बीच एक 'उत्क्रमणीय अभिक्रिया' निरंतर चलती रहती है। जिसमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार कुछ बाह्य अथवा आंतरिक तत्व उत्प्रेरक या मंदक का कार्य करते रहते हैं।

स्वतंत्र भारत में जन्मी पीढ़ी ने, जो '70 के दशक में युवा हो रही थी, स्वतंत्रता को सही मायनों में जिया और भोगा। शिक्षा एवं रोजगार ने इस पीढ़ी की स्त्री को अपनी पूववर्ती पीढ़ी की अपेक्षा अधिक तार्किक, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाया। '80 के दशक से पहले की स्त्री के विपरीत '80 के दशक के बाद की स्त्री

---

[55] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृ.15
[56] वही, पृ.15

अपनी पहचान के लिए पहले से निषिद्ध माने जाने वाले क्षेत्रों में उतरी। आर्थिक स्वनिर्भरता उसकी अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता की महत्त्वपूर्ण सीढ़ी बनी। 70 और 80 के दशक में स्त्री-पुरुष के बीच लैंगिक भेदभाव को नारीवादियों ने सांस्कृतिक प्रक्रिया के हिस्से के रूप में चिन्हित किया। स्त्री को पुरुष की अधीनस्थ बनाने वाली व्यवस्था एवं विचारधारा को पितृसत्ता के रूप में परिभाषित किया गया। ('पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग 1975 के आस-पास किया गया)। बदलती परिस्थितियों में स्त्री ने अपने शोषण-उत्पीड़न को अपने शब्दों में दर्ज़ करने का फैसला लिया। इससे पहले पुनर्जागरण एवं स्वाधीनता आन्दोलन के समय स्त्री ने अपनी जाति, और अपने समाज की दशा सुधारने के लिए कलम का सहारा लिया था। 'बेगम रूकैया सखावत हुसैन' (कहानी-सुल्ताना का सपना)[57] से लेकर 'सिस्टर' सुब्बालक्ष्मी, पण्डिता रमाबाई और चन्द्रकिरण सौनरिक्सा तक महिला प्रश्नों को साहित्य में उठाने वाली स्त्रियों की एक लम्बी फेहरिस्त है।

"स्त्री विषयक संदर्भ में पुरुष की भूमिका शोषक की रही है या उद्धारक की। पुरुष संस्कृति ने पितृसत्ता के माध्यम से पुरुष को स्वामित्व और अधिकार सौंपे हैं और स्त्री को मिली है अधीनता अर्थ परनिर्भरता और दासत्व।"[58] इस स्थिति को पुनर्जागरणकालीन स्त्री सुधार के प्रयासों में देखा जा सकता है। "ये प्रयास व्यवस्था में हो रही टूट-फूट की 'रिपेयरिंग' और यथास्थित को बनाए रखने हेतु प्रयास साबित हुए हैं। पुनर्जागरण काल में भारत में स्त्री की स्थिति में सुधार के सारे प्रयत्न अपनी ईमानदार कोशिशों के बावजूद आमूल-चूल परिवर्तन के उद्देश्य से प्रेरित नहीं थे। इसलिए विधवा विवाह की सम्भावना बनने के बाद भी बाल विवाह और सती-प्रथा का अन्त नहीं हुआ। स्त्री की परिवार में हैसियम परिवर्तित नहीं हो सकी।"[59] कदाचित् इसीलिए कार्नेलिया सोराबजी और पण्डिता रमाबाई जैसी स्त्री अधिकारों की संरक्षक महिलाओं ने 'राष्ट्रवादी विचार धारा' के संरक्षक स्त्री एवं पुरुष दोनों के ही 'महिला सुधारवादी कार्यों का प्रबल विरोध'[60] किया।

---

[57] जेराल्डिन फोर्ब्स, 'वूमेन इन मॉडर्न इण्डिया', पृ.54
[58] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ.26
[59] वही, पृ.27
[60] जेराल्डिन फोर्ब्स, वूमेन इन मॉर्डन इण्डिया, पृ.98

स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् साहित्य में भी पुरुषों द्वारा बनाए हुए मानदण्डों का बोल-बाला चलता रहा। स्त्रियों की हीन-दशा पर आँसू तो बहाए गए लेकिन उसकी स्थिति में बदलाव के ठोस एवं ईमानदार प्रयास शायद ही कभी किए गए हों। द्विवेदी युगीन दया, करुणा के बाद प्रेमचन्द और प्रसाद तथा बाद में जैनेन्द्र के साहित्य में भी स्त्री की स्थिति को बदलने की दिशा कम ही दिखती है।यशपाल का 'दिव्या' इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ' स्त्री को एक नई दिशा देती है। 70 के दशक में कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू, भण्डारी, मृदुला गर्ग आदि ने स्त्री-प्रश्नों को साहित्य में स्त्री दृष्टि से उठाया। चूँकि स्त्री सबसे ज्यादा देह के स्तर पर ही शोषित थी, अतः प्रारम्भ में स्त्री देह से जुड़े अनुभव साहित्य में खूब उभरे। प्रेम और स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण भी किया गया। कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की, 'बादलों के घेरे में' आदि तथा मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' जैसी कहानियाँ काफी चर्चित रहीं। इस दौर में स्त्री-आत्मकथाओं का भी जोर बढ़ा। स्त्री ने अपने सामाजिक-पारिवारिक अनुभवों को अपनी भाषा में लेखनी बद्ध किया। इस चरण के लेखन में पुरुष एवं पुरुषप्रधान समाज व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश देखने को मिलता है।

इस संदर्भ में, समकालीन महिला लेखन नई दृष्टि एवं संवेदना का परिचायक है। "साहित्य जगत में विगत दस वर्षों में स्त्री का केन्द्र में आना और उससे आगे बढ़कर विचार के केन्द्र में आना हमारे आर्थिक-सामाजिक विकास का परिणाम है। इन दस वर्षों में स्त्री मुक्ति के सभी प्रश्न उठे।"[61] '90 के दशक में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के कारण साहित्य में स्त्री-प्रश्नों पर विशेष रूझान दिखाई देता है। इस (द्वितीय चरण) चरण का लेखन पहले चरण की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत, गंभीर एवं व्यापक है।

समाज एवं व्यवस्था में स्त्री के बढ़ते दायरे ने उसे अपने बारे में, व्यवस्था के बारे में एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के बारे में तटस्थ एवं विवेकशील ढंग से सोचनेकी दृष्टि दी है। इस दौर की स्त्री अपने आप से भी आत्मसाक्षात्कार करती

---

[61] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृ.18

है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलनों और बहसों ने भी स्त्री को अपनी आवाज़ उठाने का मौका दिया है।

समकालीन स्त्री चिन्तन स्त्री को पितृसत्ता के नए रूपों और साजिशों के प्रति आगाह भी करता है। यौन स्वातंत्र्य के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक हर स्तर पर स्त्री की भागीदारी और उसके अधिकारों की मांग उठाई गई है। राजनीतिक दलों ने वोट बैंक के दबाव के चलते स्त्री-हितों को ध्यान में रखकर नीति-निर्माण करना शुरु किया है। इन सारे बदलावों के कारण स्त्री में एक नई चेतना एवं क्षमता का विकास हुआ है। बदलते परिवेश में घर की चौहद्दी से बाहर निकली स्त्री को कई नई मुसीबतों का सामना भी करना पड़ रहा है। चूँकि उसने पुरुष वर्चस्व वाले क्षेत्रों में भागीदारी हेतु अपनी दावेदारी पेश की है अतः प्रायः पुरुष उसे अपना स्थान हड़पने वाली समझ रहा है। नौकरी-पेशा स्त्री के जीवन में घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारी के कारण अधिक तनाव एवं दबाव पैदा हो रहा है। इसका असर स्त्री के दाम्पत्य जीवन पर भी पड़ रहा है। साहित्य में स्त्रीत्ववादी विमर्श इन सभी मुद्दों की स्त्री की दृष्टि से देखने-दिखाने का कार्य कर रहा है।

इस दृष्टि, से कविता और उपन्यास के साथ-साथ कहानी लेखन भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भिन्न-भिन्न परिवेश में स्त्री की विभिन्न समस्याओं को महिला कहानीकारों ने अत्यंत बेबाकी के साथ चित्रित किया है। स्त्री की यौन-नैतिकता एवं यौन-पावित्र्य तथा बलात्कार जैसे विषयों पर भी सुसम्बद्ध लेखन जारी है।

90 के बाद के लेखन में एक सुसंगत स्त्री दृष्टि उभर कर आने के साथ ही पुरुष लेखकों के स्त्री सम्बंधी लेखन के अन्तर्विरोध भी प्रकट होने लगे हैं। समकालीन महिला लेखन कामकाजी और घरेलू स्त्री की समस्याओं को अत्यंत तीखे ढंग से सामने लाता है।

स्त्री ने अपने लिए सामाजिक हैसियत स्वयं अर्जित की है, लेकिन घर के भीतर वह पुरुष द्वारा और अधिक सताई जा रही है। कार्यालयों, दफ्तरों, सभा, संगोष्ठियों से देर रात लौटने पर स्त्री को पूरे घर की तीखी निगाहों, कटाक्षों और प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। घर की दहलीज़ पर कदम रखते ही वह संज्ञाशून्य हो जाती है। देर रात घर लौटना उसे हमेशा चारित्रिक रूप से घेरे जाने

का कारण बनता है। ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठी स्त्री घर के भीतर पुरुष (पति) की प्रताड़ना का शिकार होती रहती है। उसकी कमाई तो सभी को चाहिए, लेकिन उसकी बदली हुई भूमिका के कारण उसमें आए हुए आत्मसम्मान से सबको चिढ़ होती है। दो पैसा क्या कमाती है, अपने आपको लार्ड गवर्नर समझने लगी, जैसे जुमले जब-तब उसे सुनने को मिलते हैं। घर से बाहर निकली स्त्री को हर पुरुष छेड़े जाने के लिए उपलब्ध' वस्तु के रूप में देखता है। कार्यस्थलों पर पुरुष सहकर्मियों की अश्लील टिप्पणियाँ एवं दस पुरुषों से उनका नाम जोड़ने की घटनाएँ आम हैं। स्त्रीत्वादी विमर्श साहित्य में इन सभी समस्याओं को पूरी गंभीरता से उठाता है। इस दृष्टि से क्षमा शर्मा का लेखन महत्वपूर्ण है ('परछाईं अन्नपूर्णा')। कार्यस्थलों पर स्त्रियों के साथ जान-बूझ कर भेदभाव किया जाता है, उनकी कार्यकुशलता पर उँगलियाँ उठाई जाती हैं। स्त्री की सफलता के पीछे उसकी देह को निहित माना जाता है।

"इस शताब्दी के अन्तिम दशक में स्त्री लेखिकाओं की ऐसी प्रखर, जागरूक पीढ़ी भी सामने आई है, जिसने परम्पररित ढंग के पितृक समर्थक स्त्री लेखन के विरूद्ध स्त्री विमर्श को नए आयाम दिए हैं। पितृक जीवन मूल्यों को बुरी तरह से प्रश्न चिन्हित किया है। उन्हें स्त्री विरोधी, मानवता विरोधी सिद्ध किया है।"[62] पहले चरण का स्त्रीत्ववादी लेखन एक 'आखेटक दृष्टि' से परिचालित था– साहित्य-जगत में जहाँ कोई स्त्री विरोधी दिखे, उस पर निशाना साधने की मुद्रा में। लेकिन आज के स्त्री लेखन में स्थिरता आने के कारण चिन्तन प्रमुख है। पितृसत्तात्मक संस्थाओं, परम्पराओं, विश्वासों और मूल्यों की आलोचना के साथ ही स्त्री की सुविधाभोगी मानसिकता पर भी विचार किया गया है। आज के दौर का साहित्य स्त्री को अपने व्यक्तित्व के निर्माण की प्रेरणा देता है। 'बना दी गई' 'स्त्री' से मुक्ति' 'स्त्री मुक्ति का सपना है'।

समकालीन स्त्रीत्ववादी विमर्श में स्वतंत्रता और मुक्ति के अर्थ अत्यंत व्यापक, गहन और सार्थक हैं। "मुक्ति का तात्पर्य पुरुष हो जाना या पुरुषोचित गुणों का स्वीकार कदापि नहीं है। स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएं हैं, परन्तु दोहरे

---

[62] राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, पृष्ठ 16

सामाजिक मानदण्डों ने जो शर्मनाक स्थिति पैदा की है, वह स्त्री को मात्र 'स्त्रीत्व' के बंधन में बाँधती है।"[63] स्त्री को पितृक पैमानों द्वारा निधारित इसी 'स्त्रीत्व' के खाँचे से बाहर आकर 'मनुष्यत्व की दिशा में अग्रसर होना है। "स्त्रीत्ववादी विमर्श का सरोकार जीवन एवं साहित्य में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री की स्थिति की पड़ताल, उसके संघर्ष एवं पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ बदलते सामाजिक संदर्भों में उसकी भूमिका, तलाशे गए रास्तों के कारण जन्मे नए प्रश्नों से टकराने के साथ-साथ आज भी स्त्री-मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप में अस्वीकारे जाने का प्रश्न ही है।"[64] हमारे समाज में आज भी, "स्त्री होना और मनुष्य होना परस्पर अपवर्जक है।"[65]

समकालीन स्त्रीत्ववादी विमर्श हर एक शोषित वंचित की मुक्ति से जुड़ता है। इसी लिए, इला भट्ट जैसी नारीवादी विचारक स्त्री-मुक्ति में 'सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति का सपना देखती हैं। "सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक बाराबरी के लिए संघर्ष करती स्त्री के पक्ष में न्याय के लिए किए गए प्रयास, स्त्री मुक्ति के प्रयास है।"[66] समकालीन महिला लेखन इस दिशा में महती भूमिका निभा रहा है। समकालीन स्त्री-लेखन में बदल रही आधुनिक स्त्री के प्रश्नों और उसके मन को लेखिकाओं ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ साहित्य में रचा है। यह स्त्री कभी पितृसत्तात्मक रूढ़ियों के समक्ष डटकर लोहा लेती है तो कभी उनसे हार जाती है। यहाँ किसी प्रकार का व्यर्थ आशावाद न दिखाकर सामाजिक हकीकत बयान करने की बेचैनी है।

इस दिशा में मृदुला गर्ग की दस प्रतिनिधि कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ (संग्रह) और डैफोडिल जल रहे हैं, गलेशियर से, वह मैं ही थी, (कहानियाँ) नासिरा शर्मा ('खुदा की वापसी, संग्रह), क्षमा शर्मा ('दादी माँ और बटुआ' आदि) नीलाक्षी सिंह (अप्रासंगिक आदि) वंदना राग आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। नीलाक्षी सिंह और वंदना राग की भाषा में भाषागत प्रौढ़ता दृष्टव्य है। इसके अलावा अल्पना मिश्र ('भीतर का वक्त',, छावनी में बेघर–संग्रह), मीराकांत ('हाइफ़न', 'कागज़ी बुर्ज़

---

[63] रेखाकस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ.25
[64] वही, पृ.24
[65] ज्योत्सना मिलन, पूर्वग्रह 104, पृ.58
[66] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, पृ.

–संग्रह), कविता ('उलटबाँसी', 'गिनी पिग', 'आशिया-ना'), मनीषा कुलश्रेष्ठ (बौनी होती परछाइयाँ', 'कठपुतलिया'-संग्रह) तथा नीलम कुलश्रेष्ठ (हैवनली हेल') के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। लवलीन की कहानियाँ भी स्त्री-प्रश्नों को गंभीरता से उठाती हैं। इधर बीच स्नोवाबार्नो का नाम काफ़ी चर्चित हुआ है। ये सभी लेखिकाएँ किसी भी हाल में औरत की मनुष्य की तरह जीने की जिद और उसकी राह की कठिनाईयों को अत्यंत गंभीरता से उठाती हैं।

समकालीन महिला कथा-लेखन का रूझान स्त्री-मुक्ति और समाज के अन्य शोषितों वंचितों की मुक्ति को एक साथ रखकर देखने की ओर बढ़ा है। स्त्रियाँ अपनी मुक्ति के साथ ही पितृसत्तात्मक मानसिकता के गुलाम पुरुष की मुक्ति की दिशा खोज रही हैं। "विमर्श का अर्थ है –जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, उसे समग्रता में समझने की कोशिश करना। अलबत्ता प्रयास यही रहे कि निष्कर्ष अन्तिम निर्णय की तरह थोंपे न जाएं, एरन् उन्हें 'ग्रो' करने के लिए भरपूर स्पेस और समय दिया जाता रहे।"[67] हिन्दी साहित्य में 'स्वानुभूति' और 'सहानुभूति' के मुद्दे को इस नजरिए से देखे जाने की जरूरत है।

हालाँकि, यह सच है कि "पुरुष के द्वारा नारी चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है। परन्तु अधिक सत्य नहीं। विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है, किन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है नारी के लिए अनुभव। अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके।"[68] और, "अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति तबही सम्भव है जब अनुभवों की प्रत्यक्ष अनुभाँति हो।"[69] अब तक के साहित्य का स्त्री दृष्टि से पाठ करने पर यह बात कमोबेश सही भी है। "क्योंकि पुरुष निर्मित साहित्य-पुरुष पाठ के रूप में निर्मित हुआ है। पुरुष का पाठ, मानदण्ड

---

[67] रोहिणी, अग्रवाल, समकालीन कथा साहित्यः सरहदें और सरोकार, पृ.19
[68] महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियां, पृ.66
[69] जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ.7

और रूपतत्व सभी आम तौर पर साहित्य के पर्याय के रूप में स्वीकृत कर लिए गए।"[70]

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्रीत्ववादी विमर्श और लेखन की प्रकृति अधिक समावेशी है। पुरुष रचनाकारों की ईमानदार कोशिशों को भी स्वीकृति मिल रही है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी उभर कर आया है कि "स्त्री दृष्टि 'सहजात न होकर अर्जित दृष्टि है।"[71] समकालीन महिला लेखन समस्या के कारणों और स्रोतों को जानकर स्त्री मुक्ति को व्यापक स्तर पर मानव-मुक्ति के रूप में देखता है।
जया जादवानी की कहानियों में स्त्री की स्थिति और समाज में उसकी भूमिका के प्रश्न को एक 'जागरुक स्त्री' की दृष्टि से जाँचा-परखा गया है। यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि स्त्री अपनी स्थिति के साथ-साथ अपने समय, समाज और संस्कृति की विवेचना अत्यंत तटस्थ ढंग से करती है। जया की कहानियों में 'स्त्रियाँ' आत्मसाक्षात्कार की अग्नि परीक्षा से गुजर कर आत्मविस्तार की ओर आगे बढ़ती हैं यहाँ विराट मानव जीवन को पर्त-दर-पर्त खोलने का प्रयास किया गया है। मानव सभ्यता के शाश्वत-प्रश्नों को भी उठाया गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के दाँव-पेंचो को भी समझने की कोशिश की है ('बाजार' कहानी)। इनकी कहानियों में चिन्तन की गहराई और सुसम्बद्धता साफ परिलक्षित होती है।

पितृसत्तात्मक मूल्यों की जकड़न में कैद पुरुष का 'भय' और 'अकेलापन' आधुनिक स्त्री समझ गई है। इसलिए वह रोने-झींकने और अपनी दारुण दशा की दुहाई देन की बजाय अपनी समस्याओं से लड़ना सीख रही है। अपने बारे में स्वयं निर्णय लेने एवं अपने-अपने अस्तित्व की सार्थकता को प्रमाणित करने के कारण उसके चेहरे पर आत्मसंतोष का भाव दिपदिपाता रहता है। वह अपने आपको भीतर से समर्थ बना रही है। विवाह एवं परिवार की सच्चाई को जानकर आधुनिक स्त्री चुपचाप इनसे मुक्ति की ओर बढ़ रही है। आत्मविश्वास इन स्त्रियों का मुख्य गुण है।

पढ़ी-लिखी, कामकाजी या घरेलू मध्यमवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं को जया विभिन्न कोणों से देखती हैं और रोजमर्रा के जीवन में अनदेखे-अनजाने रह गए

---

[70] वही, पृ.9
[71] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृ.22

तथ्यों को सामने लाती हैं। इनकी कहानियाँ स्त्री को अपनी स्थिति पर विचार करने पर मजबूर करती हैं। आधुनिक परिवेश इनकी कहानियों का मुख्य हिस्सा है। स्त्री के अपने अधिकारों की प्राप्ति में किसी दूसरे के अधिकारों का हनन न हो, इस बात का ध्यान लेखिका को हमेशा बना रहता है। कन्या भ्रूण हत्या और मातृत्व की गरिमामय अनुभूति को भी विषय बनाया गया है।

कुल मिलाकर जया की कहानियाँ मनुष्यता की ओर अग्रसर होने को दिशा दिखाती हैं। सर्जनात्मकता इनकी कहानियों की मूल चिन्ता है। वे 'कब्र में सोई स्त्रियों' की जाग्रति हेतु आह्वान करती हैं। और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्थान पर एक सहज, सरस और मानवीय व्यवस्था का विकल्प सामने रखती हैं।

द्वितीय अध्याय

जया जादवानी की कहानियाँ : अन्तर्वस्तु का चयन

2.1 जया जादवानी का लेखन : संक्षिप्त परिचय

मनुष्य मन की पर्तों को खोल उसकी अनुभूतियों को अपनी रचनाओं में बिखेरने वाली जया जादवानी का जन्म 1 मई, 1959 को कोतमा, मध्यप्रदेश में हुआ। उन्होंने हिन्दी एवं मनोविज्ञान विषयों में स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त की है। अपनी किशोरावस्था से ही जीवन को एक नए नजरिए से देखने वाली जया की प्रथम रचना– 'मैं शब्द हूँ' (कविता-संग्रह) 1995 में प्रकाशित हुई लेकिन उन्हें पहचान मिली 2000 में प्रकाशित होने वाले उपन्यास 'तत्वमसि' से। मनुष्य को उसके स्व से परिचित कराने वाला यह उपन्यास मानव-जीवन को एक रागोत्सव मानकर उसे 'अध्यात्मिक प्रत्ययों' के माध्यम से देखता-परखता है। जीवन के प्रति सतत् जिज्ञासा और संवेदनशील, पारदर्शी दृष्टि ही लेखिका से इसकी रचना करवा सकी।

साहित्य और मनोविज्ञान विषयों की अध्येता जया अपनी प्रखर मेधा और सत्यान्वेषी दृष्टि के कारण ही मनुष्य-मन और जीवन-जगत को उसकी विराटता में देखती हैं। स्वस्थ, संतुलित और समरस जीवन की प्राप्ति हेतु प्रयास उनकी रचनाओं में स्पष्ट दीख पड़ता है। उनकी रचनाओं में स्त्री अपने 'स्व' के प्रति जागरुक है और मनुष्य बनने की दिशा में सतत् प्रयास करती है। समय, समाज और संस्कृति के बारे में संविदेनशील आधुनिक स्त्री की दृष्टि क्या है, यह इनकी कहानियों के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है। सदियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मूल्यों, संस्कारों, और रुढ़ परम्पराओं की जकड़न में कैद स्त्री अपने 'स्व' के साथ-साथ अपने समय, समाज और व्यवस्था को सकारात्मक विकास दिशा में विकसित करने का प्रयास करती है। वह बहुत द्वन्द्वों से गुजरकर इस अवस्था में पहुँची है। बदली हुई स्थितियों और स्त्री की बदली भूमिका के कारण यह सम्भव हो सका है।

मनुष्य और जीवन के प्रति अक्षुण्ण प्रेम ही उनकी रचनाओं का स्रोत है। गहन सर्जनात्मक चिन्ता की परिचायक उनकी रचनाएँ स्त्री-प्रश्नों के साथ-साथ जीवन के अन्य पहलुओं को भी बखूबी उभारती हैं। जया जादवानी का लेखन हिन्दी साहित्य में नारीवादी लेखन के द्वितीय चरण से सम्बद्ध है।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री को जहाँ कई सामाजिक-राजनीतिक संवैधानिक अधिकार मिले वहीं उसकी स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाई गईं।

शिक्षा को स्त्री अधिकारों की प्राप्ति की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण हथियार माना गया। परिणामस्वरूप, स्त्री की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। दूसरे, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण मध्यम वर्गीय स्त्री को आर्थिक रूप से स्वनिर्भर होने के मौके मिले। लेकिन यह स्वतंत्रता पूर्व पैदा हुई पीढ़ी थी। इसके बाद की पीढ़ी अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों का स्वाद सही मायने में चख पाई। उसमें जीवन के प्रति एक बिल्कुल नया नजरिया उभरा है। इस पीढ़ी की स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग है। जया जादवानी भी स्वतंत्रता के बाद जन्मी इस पीढ़ी का हिस्सा हैं। आर्थिक स्वनिर्भरता ने स्त्री को अपने बारे में सोचने का मौका दिया। 70 के दशक में नैतिकता के नए मानदण्ड गढ़े गए। गर्भनिरोधक उपायों ने उसके हित में नई क्रान्ति की शुरुआत की। अपने अच्छे-बुरे प्रभावों के साथ इन साधनों ने एक नई स्त्री छवि को जन्म दिया। 80 के दशक में वैश्विक स्तर पर महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकार-संबंधी प्रश्न उठाए गए। 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस व सन् 1975-85 अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया। राष्ट्रसंघ ने अपने सदस्य देशों से स्त्री की दशा सम्बंधित रिपोर्ट बनाने को कहा, भारत ने भी इस दिशा में बढ़-चढ़कर प्रयास किए। रिपोर्ट ने जो आकड़े बताए उससे उदारवादी, आधुनिक मानवाधिकारवादियों, चिन्तकों के होश उड़ गए, उनके ही समाज का आधा-आधा किस अंधेरी गुफा में रह रहा था, जिससे वे अनजान थे। सारी घटनाओं ने मिलकर स्त्री की स्थिति सुधारने की दिशा में नए प्रयास किए।

इन सब परिस्थितियों ने मिलकर एक नई स्त्री का निर्माण किया। जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक तो है ही अपने समय, समाज और संस्कृति की समीक्षा भी अत्यंत सजग ढंग से करके अपनी सार्थकता की तलाश करती है। जया जादवानी की रचनाओं में यह स्त्री अपने सम्पूर्ण प्राणवेग से उभरी है। स्त्री की स्थिति और भूमिका के साथ स्त्री पुरुष सम्बंधों की पड़ताल भी यहाँ अत्यंत संवेदना के साथ की गई है। जया जादवानी की अब तक प्रकाशित रचना हैं–

कविता-संग्रह

(1) 'मैं शब्द हूँ' – 1995, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(2) 'अनन्त सम्भावनाओं के बीच' – 2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(3) 'उठाता है कोई एक मुट्ठी ऐश्वर्य' – 2009, मेधा प्रकाशन, नई दिल्ली

उपन्यास

(4) 'तत्वमसि' – 2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(5) 'कुछ न कुछ छूट जाता है'–2002, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

कहानी-संग्रह

(6) 'मुझे ही होना है बार-बार' – 2000, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(7) 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है' – 2002, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(8) 'उससे पूछो' – 2008, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

(9) 'मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पे अपना हल लिए'–2009, मेधा प्रकाशन, नई दिल्ली

जया जादवानी मनुष्य एवं समाज के स्वस्थ्य विकास का सपना सँजोती हैं। उनकी कविताएँ भी उनकी इसी सर्जनात्मकता को व्यक्त करती हैं। प्रेम उनकी कविता का भी प्रमुख विषय है। 'जब प्रेम नहीं होगा' कविता में वे वह 'प्रेम न होने पर' जीवन की स्थिति को स्पष्ट करती हैं–

"यातना नहीं होगी, न दुख
पीड़ा भरी उत्सुकता नहीं होगी
लहरे दुनियावी पटक-पटक कर धोएँगी देह
उछाल देंगी किनारे पर
न चाह होगी उठकर खड़े होने की
न सुखाने की धूप में खुद को
+ + + +
+ + + +
एकांत की खौफनाक नंगी चोटी पर
जमकर बर्फ हो जाने का भय नहीं होगा

न रुदन होगा किसी सुराख़ से निकलता

न हँसी होगी झमाझम बरसती

+ + + +

+ + + +

आ खड़ी होगी मृत्यु एक दिन चुपचाप सिरहाने

आँख मूँद उसे अदिखा करने का नाटक नहीं होगा

न होगी जीने की हसरत, न पुकार

'रुके रहना, फिर आएँगे, फिर फिर आएँगे'

नहीं कहेंगे किसी को

बिना शोर मचाए चले जाएँगे चुपचाप

जब प्रेम नहीं होगा, कुछ भी नहीं होगा"[1]

देखने में जितना आसान लगता है, उतना ही कठिन है भावों को उनके अनुरुप शब्दों में ढाल देना। जया जादवानी भावों के अनुरुप शब्द चुन-चुन कर इस्तेमाल करती हैं। प्रायः तो शब्दों की मितव्ययिता ही दिखाई देती है। एक ही शब्द बहुत कुछ कह देता है। ऐसी ही एक कविता है 'जगह'। पाँच पंक्तियों की यह छोटी-सी कविता जो कुछ व्यक्त करती है और उससे भी ज्यादा मनुष्य को सोचने पर मजबूर करती है, एक तरफ स्वार्थी आत्मकेन्द्रिकता की प्रवृत्ति पर, दूसरी तरफ सब कुछ जीत कर अपने साम्राज्य के अधीन कर लेने की प्रवृत्ति पर–

"एक चिड़िया रह सकती है एक पेड़में

एक पेड़ में बहुत सी चिड़ियाएँ रह सकती हैं

जब भी जाओ निकट उनके

सरक कर जगह दे देती हैं...[2]

लेकिन आजकल जीवन इतना जटिल होता जा रहा है कि एक व्यक्ति दूसरे को कुछ देना ही नहीं चाहता। उसे सबकुछ सिर्फ अपने लिए चाहिए। पूरा का पूरा साम्राज्य। लेकिन किसने बनाया है ऐसा समाज और ऐसी मानसिकता हमीं लोगों ने। कविता का स्त्रीवादी पाठ भी महत्त्वपूर्ण है – कि पुरुष स्त्री के लिए जरा भी सरक कर जगह देना नहीं चाहता, उसे सब कुछ अपने लिए ही कम लगता है–

---

[1] जया जादवानी, प्रेम के बाद (कविता) http://hindinest.com/kavita/2003/025.htm

[2] जगह, वही

लेकिन 'जगह' तो 'इरादों' से बनती है। मनुष्य को इन चिड़ियों से सबक लेना चाहिए। इसी चिन्ता को व्यक्त करती है उनकी कहानी 'तलाश जारी है।' स्त्री सबके लिए समान स्वतंत्रता चाहती है, उसे ऐसे घर की तलाश है जहाँ मनुष्य रहते हों, जहाँ सम्बंधों में सौहार्दृता हो। वह युद्ध, तनाव, और बंधनों को नहीं चाहती, "सो उसकी भी उड़ान जारी है – मनचाही जगह-मनचाहे साथी के लिए और साथियों को भी घर नहीं साम्राज्य चाहिए – आकाश नहीं, सरहदें चाहिए–जिन्हें अपना कहा जा सके, जिन पर गर्व किया जा सके। सो दोनों की तलाश जारी है– एक की घर के लिए–दूसरे की साम्राज्य के लिए।"[3] यह कहानी मनचाहा पुरुष और घर न मिलने पर स्त्री की हताशा को अत्यंत सटीक ढंग से बयान करती है, "और वह मासूम चिड़िया, जिसने इस घोंसले से अपने जीवन की शुरुआत की थी– वह ख्वाब कब का काफूर हो चुका था और अब उसे यह घोंसला रास नहीं आ रहा था।"[4]

---

[3] जया जादवानी, 'तलाश जारी है', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ. 69

[4] वही, पृ.69

2.2 कहानियों की निर्मिति/बुनावट

जया जादवानी का लेखन संक्रमणशील युग का लेखन है; जहाँ स्त्री की कई प्रजातियाँ धरती पर अस्तित्वमान हैं। एक ओर स्त्री ने अब तक उसके लिए निषिद्ध माने जाने वाले क्षेत्रों में भी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है तो दूसरी ओर वह आज भी पितृसत्ता के प्रचलित मानदण्डों और परम्पराओं द्वारा विभिन्न रूपों में, भिन्न-भिन्न स्तरों पर शोषित हो रही है।

जया जादवानी की कहानियाँ इस बदलते हुए परिवेश में स्त्री की स्थिति और भूमिका को विभिन्न कोणों से, संवेदनशील स्त्री-दृष्टि से जाँचने-परखने का काम करती हैं। इनमें अपने समय, समाज और संस्कृति में स्त्री की भूमिका और उसके संघर्षों को बयान किया गया है। आज जहाँ एक ओर बदलती सामाजिक स्थितियों के दबाव और स्वयं के प्रयासों से स्त्री पितृसत्ता की जकड़न से कुछ हद तक स्वतंत्र हुई है, वहीं दूसरी ओर, अपनी समस्याओं को चेतना के स्तर पर भलीभाँति जानने-समझने के कारण उसके अन्तर्मन में एक अजीब बेचैनी, द्वन्द्व और उथल-पुथल चलती रहती है।

समाज, व्यवस्था, परिवार और सम्बंधों के बीच रहती स्त्री जो बाहर तो मशीन की भाँति चल रही है – दूसरों के इशारों पर, और अंदर ही अंदर वह अपने इस तरह मशीन होते जाने को देखकर हैरान है। ऐसा नहीं है कि जया जादवानी से पूर्व स्त्री-पुरुष संबंधों या स्त्री प्रश्नों को लेकर हिन्दी साहित्य में लिखा नहीं गया, लेकिन यहाँ प्रश्नों को देखने का नजरिया एकदम नया है। ये कहानियाँ बाहरी दुनिया के बरक्स स्त्री के भीतर की दुनिया, उसके रंगों, उसकी इच्छाओं, दुख-सुख और चाहनाओं से कुछ इस तरह परिचित कराती हैं कि पाठक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। उसे पता चलता है कि यह तो उसका अपना ही जाना-पहचाना संसार है, और अब तक वह इससे अनजाना कैसे रहा?

लेखिका स्त्री जीवन को सतही तौर पर देखने और चलताऊ ढंग से कुछ विचार व्यक्त कर देने के बजाय सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में उसकी पहचान, उसके अस्तित्व और उसकी अस्मिता के सवाल को उठाती हैं। यही सवाल कहानियों में स्त्री के अन्तर्मन को मथते हुए दिखाई देते हैं।

कहानियों में व्यक्त प्रश्न, चिन्ताएँ और स्थितियाँ किसी कल्पना की उपज न होकर हमारे समय और समाज का ही यथार्थ रूप हैं। इन सच्चाइयों को ही लेखिका कुछ इस तरह प्रस्तुत करती हैं कि सबकुछ मिलकर एक जबर्दस्त कहानी की शक्ल अख्तियार कर लेता है। इन प्रश्नों पर विचार करते समय लेखिका विराट मानव जीवन पर भी विचार करती है क्योंकि स्त्री की दुनिया कहीं और नहीं, बल्कि इन सबके बीच ही स्थित है।

मनुष्य जीवन के प्रति गहन सर्जनात्मक चिन्ता ही जया जादवानी की कहानियों का मूल है। युगों-युगों से पुरुष द्वारा निर्मित व्यवस्था में अधीनस्थ की भूमिका में जीती स्त्री न केवल स्वयं की स्थिति पर वरन् सम्पूर्ण व्यवस्था पर विचार करती है। चूँकि वह इसी व्यवस्था में रहती, जीती है अतः कई धरातलों पर लेखिका ने स्त्री के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव जाति के निजी और अंतरंग अनुभवों पर लेखनी चलाई है। क्योंकि यह जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, अतः इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। चेतना के स्तर पर जागरुकता कहानियों की प्रमुख विशेषता है। हम भौतिक धरातल के साथ-साथ आत्मिक स्तर पर भी जीते हैं और अपनी परिस्थितियों, आशाओं, आकांक्षाओं और समस्याओं पर विचार करते रहते हैं। हमारे मनोजगत के कुछ ऐसे कोष्ठ भी होते हैं जिनके बारे में हम खुद नहीं जानते या जानबूझ कर उनकी अनदेखी करते रहते हैं। लेकिन बाह्य दुनिया के समानान्तर मनुष्य के भीतर भी एक दुनिया होती है, जहाँ कुछ न कुछ चलता रहता है और अपने निशान छोड़ता रहता है। जब कभी हम अपने मन के इन अनजाने-अनचीन्हे कोष्ठों में उतरते हैं तो अचम्भित रह जाते हें कि क्या यह हमारे मन का ही एक हिस्सा है, जिसे हम अब तक अनदेखा करते रहे। चूँकि स्त्री की दुनिया उसके अंदर ही ज्यादा होती है, क्योंकि बाहर तो उसका कुछ होता ही नहीं, अतः वह इसे ज्यादा पहचानती है। जया स्त्री मन के इन कोष्ठों में उतरकर पर्त-दर-पर्त इस तरह खोलती हैं कि सच अपने नग्न रूप में सामने आ जाता है। यथार्थ को प्रभावी बनाने के लिए लेखिका कहानियों में सपनों, फंतासियों, रहस्यों और तनाव को रचती हैं।

दरअसल, हर व्यक्ति, जो वह बाहर से दीखता है, जरूरी नहीं कि भीतर से भी वैसा ही हो, प्रायः तो वह वैसा बिल्कुल ही नहीं होता। स्त्री भी इसका अपवाद नहीं है। इसका कारण यह है कि बाह्य या भौतिक स्तर पर जहाँ उसके निजी

स्वार्थ, इच्छाएँ, परम्पराएँ, और रीति-रिवाज उसे नियंत्रित करते हैं वहीं अन्तर्मन के स्तर पर वह इनका विश्लेषण करता है, कि 'जो' है, वह क्यों है? क्या उसे वैसा होना चाहिए? इस तरह कोई भी भाव, विचार अनुभव या दृश्य कहानी की निर्मिति का आधार बन जाता है।

जया की कहानियाँ स्त्री में मुक्ति-चेतना के निर्माण की क्रमिक यात्रा को उजागर करती हैं। वह इस बात से वाकिफ हैं कि सजाता, आर्थिक स्वतंत्रता और जागरुकता के बिना मुक्ति असम्भव है। चूँकि स्त्री सभ्यता, संस्कृति और परम्पराओं की शृंखला में सदियों से जकड़ी हुई है, अतः उसे सबसे पहले मानसिक मुक्ति की जरूरत है। उसे खुद को समझने और भीतर से मजबूत बनाने की जरूरत है ताकि वह बाह्य स्तर पर अपनी राह में खड़ी बाधाओं का सामना कर सके, और उनका निवारण कर सके। नारीवाद सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति की बात करता है, और मुक्ति एक आयामी नहीं होती वरन् वह जीवन की स्वाभाविकता को समाप्त करने वाले बंधनों को नकारती है। स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। स्त्री जब तक पुरुष को इस बात का अहसास नहीं करा पाती, और उसकी मानसिकता नहीं बदल पाती तब तक उसकी मुक्ति असम्भव है। क्योंकि न तो स्त्री-पुरुष के बिना पूर्ण है और न ही पुरुष स्त्री के बिना अपनी दुनिया बसा सकता है। लेकिन समस्याएँ खड़ी तो पुरुष ने ही की हैं तो, परिणाम तो वह भी भुगतेगा। इसी कारण हमें आस-पास, समाज में इतनी समस्याएँ दिखाई देती हैं। स्त्री अब समझौते की जिन्दगी जीने को तैयार नहीं और पुरुष समझना नहीं चाहता। अगर वह स्त्री को भी उतना ही मनुष्य मान ले जितना खुद को मानता है और अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों के बारे में भी सोचे तो समस्या की जड़ ही खत्म हो जाएगी।

जया जादवानी की कहानियाँ सदियों से पुरुष के इशारे पर चलती और शोषण, उत्पीड़न सहती स्त्री के भीतर इसी चेतना को उद्‌भूत करती हैं। लेखिका स्त्री जीवन को मानो हर दो-दो डिग्री के कोण बदल कर सामने रख देती है।

प्रथम कहानी-संग्रह 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियाँ स्त्री मन की पर्तों के साथ ही स्त्री-पुरुष संबंधों की सच्चाई को भी बयान करती हैं। कहानियों में अत्यंत विस्तृत स्तर पर संवेदनशील स्त्री की मनःस्थिति और पुरुष से उसके संबंध के बारे में तथा समाज, व्यवस्था और संस्कृति के बारे में स्त्री की दृष्टि को, उसकी

सोच को उभारा गया है। अपने अनुभव के विस्तृत दायरे में ये कहानियाँ स्त्री की बिल्कुल नई, किन्तु वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। यहाँ स्त्री अपना बयान अपने शब्दों में दर्ज करती है।

प्रथम संग्रह की पहली कहानी, 'शाम की धूप में', को लम्बी कहानी कहा जा सकता है। अपने विस्तृत कैनवॅस में यह कहानी पारम्परिक संयुक्त परिवार में एक ऐसी बूढ़ी स्त्री की कहानी है जिसने पूरा जीवन पति, बच्चों और घर की सेवा में लगा दिया, लेकिन फिर भी वह किसी के लिए जरूरी नहीं है। किसी ने उसके मन को कभी जानने का प्रयास नहीं किया। कहानी इस अर्थ में नयापन लिए है कि यह हमारे अपने घरों या आस-पास की यथार्थ दास्तान है। शुरु में पढ़ते हुए यह इस औरत के पति 'सेठ' पर केन्द्रित लगती है, जिन्हें एक तरफ बुढ़ापे ने मारा है तो दूसरी तरफ भूख ने और तीसरी तरफ निरर्थकता बोध ने। 70 रुपये से 70 लाख की सम्पत्ति खड़ी करने वाले इन्सान को आज कुछ खाने-पीने के लिए देने में बहुओं को आफत लगती है। रोज सुबह एक ही नाश्ता–दो पराँठे और मुरब्बा और शाम को चार बिस्कुट और चाय। कोई कभी नहीं पूछता कि कुछ और तो नहीं चाहिए। सुबह-शाम घर में चार-पाँच किलो दूध आता है लेकिन उन्हें कभी नहीं मिलता। बेटे उनसे दो बातें करने का भी वक्त नहीं निकाल पाते। पोते और बहुओं की तो बात ही अलग है। और पत्नी? पत्नी से तो कभी उन्होंने बोलने-बतियाने का रिश्ता ही नहीं बनाया। आज वे 'दो शब्द' किसी से बोल लेने को मारे-मारे फिरते रहते हें। आज न रौब रहा न पुराने दिन। 'नीविया', 'पियर्स' के शौकीन सेठ आजकल सरसों-तेल से ही काम चला लेते हैं।

पत्नी की आँखें नहीं रहीं, बुढ़ापे की मार अलग, अब उन्हें अहसास होता है कि "अगर उन्होंने इस तरह नहीं जिया होता, जिस तरह जिया, तो आज बुढ़ापा भी ऐसा नहीं होता। वे उनके पास बैठी मटर-फलियाँ छील रही होती या ऊन या धागे के लच्छों को अपने दोनों कमजोर घुटनों में फँसाकर उनका गोला बना रही होतीं। तब वे उनसे कुछ कह सकते थे और तो कोई नहीं सुनता। यह जो दो शब्द किसी से कहने-सुनने को वे दिन भर मारे-मारे फिरते हैं, वे उनसे कह सकते थे। कितने बरस हो गए, उन्होंने उनसे कुछ पूछा तक नहीं। जब वे बहुत बीमार थीं और उनकी बच्चेदानी निकाली गई थी, तब भी नहीं, जब उनकी आँखों का ऑपरेशन

हुआ था और आँखें फिर हमेशा के लिए चली गई थीं, तब भी नहीं। पता नहीं किस रास्ते से होकर वे उनसे दो मिनट मिलते थे, फिर वापस अपनी सुरक्षित जगह पर आ जाते थे। उन्हें कभी नहीं लगा, उस तरफ भी एक दुनिया है, जो जानी जानी चाहिए। उन्हें सिर्फ अपनी दुनिया रोमांचकारी लगी, जिसमें वे रहते थे।"[5] और अब जब वे उनसे कुछ कहना चाहते हैं, ऐसा, जो कभी नहीं कहा, तो उनकी हिम्मत ही नहीं होती क्योंकि चुप्पी की मियाद बहुत लम्बी हो चुकी है।

और उनका क्या? वे तो बेचारी इन सब के बीच जीने की अभ्यस्त हो चुकी हैं। "दिखाई बहुत कम देता है, फिर भी घर में टटोलती हुई घूम लेतीं, चावल धो देतीं, दाल भिगो देतीं। आटा गूँध देतीं। कोई नहीं छोड़ता। दो रोटियों का हिसाब तो देना ही पड़ेगा---।"[6] न जाने कितने वर्षों की पीड़ा, दुख, तकलीफ उनकी छाती में बर्फ के गोले सी सख्त होकर दफन हो गयी है। उनके मन के अंधेरे कोनों से चादर हटती है तब जब एक दिन सहसा 'सेठ' रोज-रोज एक ही नाश्ते से ऊब कर थाली फेंक देते हैं। और बहू बेटे के सामने ही उन्हें सौ जली-कटी सुना डालती है। उनकी आँखें टपकने लगती हैं–'जिसने भरी जवानी अच्छा खाया पिया, उसे ये रूखा-सूखा कैसे पचेगा। फिर मन ही मन पति की आदत को कोसती हैं – 'खा लेते, मैं भी तो चुपचाप निगल लेती हूँ। जवानी गई सब गया।'

वे बेटे और बहुओं को कोसती हैं कि भगवान तुम्हें जब बुढ़ापे में यही दिन दिखाएगा तो जानोगे हमारा दर्द। लेकिन अचानक पिछला सब कुछ उन्हें याद हो आता है और दुख की बर्फ पिघलकर बहने लगती है। उनके मन में सब कुछ फिल्म की तरह उभर आता है। पति ने तो कभी उनकी कद्र ही नहीं की। "न औलाद अपनी हुई, न तुम। जब मिल कर्जे पर उठाई मैंने भी दिए थे पचास हजार रुपये अपनी मेहनत की गाढ़ी कमाई। तब कहते थे, यह एहसान मैं कभी नहीं भूलूँगा। एहसान? तुम तो सुख के साथी हो, मेरे दुख से तुम्हें क्या? कभी हारी-बीमारी में चादर हटाकर पूछा–क्या हुआ? कितनी भी तकलीफ में रही, तुम्हें अच्छा बनाकर दिया कि लो, खाओ। और तेवर तो देखो, ज़रा सा खाना कम-बेसी हुआ नहीं कि थाली फेंकी और मारपीट शुरु। अब फेंकते हो तो पता चलता है न। कैसे चुपचाप

---

[5] जया जादवानी, शाम की धूप में, मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से), पृष्ठ 10
[6] वही, पृ.13

निकल गए। मर्द हो न, करते सामना। तब तो कहते थे– वह नर ही क्या, जो मादा से डर जाए। डरा तो रही है एक मादा तुम्हें, करो मुकाबला भाग क्यों गए? भगवान अंधा थोड़े है यही का यहीं लेगा। अब करके दिखाओ आवाज़ ऊँची। मुझसे तो गाली दिए बगैर कभी बात नहीं की। अब तो एक कहते हो, दस सुनते हो। मैं ही थी जो सुनती रही, सुनती रही। रो-रोकर आँखें गँवा ली अपनी। क्या मिला? कौन कहता है–हाँ, तुमने किया। न बच्चे कहेंगे, न तुम। तब भी बोझ थी, अब भी बोझ हूँ।"[7]

दूसरी तरफ 'सेठ' की एक बहन है उनसे पन्द्रह साल छोटी लेकिन वहाँ भी दूरियाँ इतनी ही हैं दोनों के बीच। भाई की हालत देखकर उन्हें दया आती है। कभी-कभी कुछ बनाकर खिला भी देती हैं। एक दिन सेठ उसी बहन के सामने फूट-फूट कर रो देते हैं। और जब शान्त होकर वापस खेतों की तरफ लौटते हैं तो शाम की धूप अर्थात उम्र के आखिरी छोर पर उन्हें सब कुछ साफ-साफ दिखाई देने लगता है लेकिन अब उनके वश में कुछ नहीं है। जाहिर है कि, 'सेठ' के रूप में पुरुष अपनी इस स्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार है, काश कि उसने उस पत्नी या बहन से स्नेह का रिश्ता बनाया होता, सिर्फ अपने घमंड में न रहता तो शायद बुढ़ापे में जीवन इतना खाली भी न होता। इंसान रोते हुए पैदा होता है, शिकायत करते हुए जिंदगी गुजारता है और पछताते हुए मर जाता है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'वहाँ मैं हूँ' सामाजिक रूप या कहें, सतही स्तर पर खुशनुमा और प्रेम से लबरेज़ दिखाई देने वाले पति-पत्नी के संबंधों की आन्तरिक जड़ता, प्रेमविहीनता और सड़न को उजागर करती है। जैसे दूर से रेत भी सुन्दर लगती है और सपने भी, उसी तरह हमारे समाज में स्त्री-पुरुष संबंध, विशेष रूप से, उच्च या, उच्चमध्यवर्ग में, देखने में जितने प्रेमपूर्ण लगते हैं वास्तव में वहाँ उतनी ही जड़ता है, प्रेम तो वहाँ बिल्कुल ही नहीं है। बस एक दिखावा है। सजीधजी और मुस्कराकर बातें करती स्त्री के बारे में कोई नहीं कह सकता कि उसे भी कोई दुःख हो सकता है। उसकी तो सज-धज ही उसकी प्रसन्नता का पैमाना है। दूर से चमक-दमक को देखकर यह अन्दाज़ा लगा लिया जाता है कि सब अच्छा है। उसके

---

[7] वही, पृ.15

भीतर के अंधेरों को, उसकी अपनी इच्छाओं को न तो कोई समझना चाहता है, न जानना। कहानी के सात दृश्य उच्चवर्ग की ऐसी ही स्त्री की मनःस्थिति को चित्रित करते हैं। उसका मन तो कहीं शामिल ही नहीं है, बस देह को भुगतने के लिए छोड़ वह दूर जा खड़ी होती है। लेकिन कब तक? आखिर वह अपनी ही देह को कैसे अनदेखा कर सकती है। उसकी देह पति के साथ संबंध बनाती है, पार्टियाँ अटेण्ड करती है, और कभी किसी बात के लिए एतराज नहीं करती। लेकिन क्यों? क्योंकि वह विरोध करके झमेला मोल नहीं लेना चाहती, दूसरे, उसकी जरूरतें भी पूरी होती रहती हैं इस तरह।

दृश्य-सात – "वह गहरी नींद में खर्राटे ले रहा है। मैं अपनी देह के पास आती हूँ। वह गहरी थकान से लस्त-पस्त अंधेरे में जाने क्या देख रही है।"[8] अब इस स्त्री को अहसास होता है कि अपने भीतर किसी भी अनिच्छित चीज को जमने नहीं देना चाहिए, उसे फैलते देर नहीं लगती। अब वह अपनी देह से एकाकार है क्योंकि वह समझ गई है कि जब तक वह देह से अलग रहेगी उन दोनों को कोई भी जीत लेगा। वह देह से अलग 'आधी-अधूरी' नहीं रहना चाहती– "'नहीं, अब नहीं', बार-बार नहीं....."[9] हालाँकि वह इस हकीकत को जानती है कि यह लम्हा बहुत देर नहीं रहने वाला, कोई उसे ऐसा करने नहीं देगा। लेकिन वह सिर्फ उस लम्हे को लेना चाहती है, इससे पहले कि कोई उससे यह लम्हा छीन ले। दरअसल, इस संग्रह की कहानियाँ स्त्री को उसके अन्तर्जगत से, उसकी चेतना, इच्छाओं और स्वप्नों से परिचित कराती हैं। वह जाग्रत तो है, अपने भीतर की सच्चाइयों से वाकिफ भी लेकिन अभी वह मानसिक रूप से ऊहापोह की स्थिति में है। अभी वह अपनी शर्तों पर जीवन जीने की ओर मुड़ी है, आगे बढ़ना अभी बाकी है। लेकिन उसकी यही स्थिति उसे आगे का रास्ता दिखाएगी, उसे भीतर से शक्ति और साहस देगी। अभी तो वह मानसिक रूप से स्वतंत्र हो रही है, अपने 'स्व' को पहचान रही है। ऐसी ही एक कहानी है ' जहाँ कोई नहीं जाता'। स्त्री-पुरुष को अपनी भीतर की सच्चाइयों से, इच्छाओं से वाकिफ कराना चाहती है, उसे बार-बार मनाती है कि वह उसे जाने, उसका सहचर बने। लेकिन पुरुष तो उससे 'बार्डर' पर

---

[8] जया जादवानी, वहाँ मैं हूँ, मुझे ही होना है बार–बार (कहानी संग्रह से), पृ.30
[9] वही, पृ.30

मिलना चाहता है। और इस हकीकत को समझ कर स्त्री एक दिन पुरुष के आने पर उसे वापस भेज देती है 'कि वह यहाँ नहीं रहती', दरअसल वह तो अपनी भीतर की दुनिया में रहती है 'जहाँ कोई नहीं जाता'। वह अपनी दुनिया में उतर रही है, नहीं "उतरने की तैयारी में वह अभी अधूरी खड़ी है।"[10] अपने मन पसन्द सहचर के इंतजार में। उसे इंतजार गवारा है, लेकिन वह अब अपने मन को, 'स्व' को नहीं मारेगी। जबकि 'लड़की आसमान में' बचपन की दहलीज पारकर बड़ी होती लड़की के सपनों के कत्ल की कहानी है। बचपन में जिसके सपने आसमान जितने विस्तृत और इच्छाएँ तारों जैसी चमकीली थीं। लेकिन "एक दिन बारिश हुई.... इतनी तेज़ कि सब कुछ बह गया।"[11] उसे लगता है कि – जैसे-जैसे वह बड़ी हो रही है, सबके साथ-साथ उसे अपना और अड़ोस-पड़ोस के मकान भी घूर-घूर कर देख रहे हैं।' उसे कहीं भी इन निगाहों से मुक्ति नहीं मिलती।

उसकी स्थिति, जो सदियों से बड़ी होती लड़की की स्थिति को दर्शाती है, को सटीक ढंग से बयान करती है यह कहानी। अब सपने उसके पास हरदम नहीं आते, उसे उन पर ऐतबार भी नहीं रहा अब। एक दिन उसने सपनों के बचे-खुचे टुकड़ों को बटोर कर बाहर फेंक दिया। और रात को किसी के रोने की आवाज से उसकी नींद खुलती है – अरे यह तो उसकी माँ है, जो सपनों के टुकड़ों को हाथ में लेकर धीरे-धीरे रो रही है। कौन जाने शायद उसके भी सपने कभी ऐसे ही टूटे होंगे। इसीलिए वह लड़की को हमेशा बरजती है, सपने देखने से क्योंकि उसे उनके टूटने से होने वाली तकलीफ़ का अहसास है। वह नहीं चाहती कि उसकी बेटी भी उस तकलीफ़ से गुजरे।

सपने भी जानने लगे हैं कि अगर किसी ने उन्हें लड़की के पास जाते देख लिया तो दोनों को कत्ल कर दिया जाएगा। एक तरफ सपने हैं, दूसरी तरफ हकीकत "जहाँ उसका टूटा -फूटा घर है, एक टूटी खिड़की पर उसका चेहरा टिका है और बाँह पर माँ के खुरदुरे हाथों की सख्त पकड़। कीचड़ में लिथड़ा पड़ा दारु के नशे में धुत्त बाप है और सदियों से सूखी-दरकी जमीन पर सूपा से चावल फटकती माँ है।' लड़की सोच रही है, वह कहाँ है– वह किसे चुने–सपनों की रंगीन

---

[10] जया जादवानी, जहाँ कोई नहीं जाता, मुझे ही होना है बार–बार (कहानी संग्रह से), पृ.49
[11] जया जादवानी, लड़की आसमान में, मुझे ही होना है बार–बार (कहानी संग्रह से), पृ.32

दुनिया के लिए दुस्साहस दिखाए, या दुबक जाए हकीकत के अंधेरों में। "वह अभी ठिठकी खड़ी है।"[12] यह तस्वीर है उस बड़ी होती लड़की की जिसकी आँखों में सपनों के प्रति मोह है, वह उन्हें मरने नहीं देना चाहती। वह अभी अनिश्चय की स्थिति में ठिठकी खड़ी है', जल्द ही वह फैसला लेगी अपने सपनों को जीने के हक में, आसमान को अपनी बाहों में भरकर।

प्रेम, के गुणगान में विद्वानों और साहित्यकारों ने न जाने कितने पृष्ठ रंगे हैं प्राचीन काल से लेकर आज तक। लेकिन समाज इसकी छूट नहीं देता, लड़की को तो बिल्कुल नहीं। और इसके लिए समाज के नियंता, पितृसत्ता के सम्राट अपने नुमाइंदों को नज़र रखने के लिए लगाते हैं कि कहीं कोई प्रेम तो नहीं कर रहा। प्रेम स्त्री का स्वाभाविक गुण है, उसके भीतर चाहे सब कुछ सूख जाए लेकिन प्रेम की झील में कुछ न कुछ बचा ही रहता है। जिस क्षण प्रेम अपनी सम्पूर्णता में उतरता है आँखों में, वह किसी बंधन को नहीं मानता, वह क्षण अपने में अद्‌भुत होता है। इसे ही बयान करती है कहानी 'जब वह होता है'। स्त्री चेतना की दृष्टि से एक और महत्त्वपूर्ण कहानी है इसी संग्रह की 'तीसरा कक्ष'। हर स्त्री के जीवन में तीन कक्ष होते हैं, लेकिन वाकिफ तो वह दो से ही होती है, तीसरे के बारे में तो कुछ पता ही नहीं उसे। पहला कक्ष है घर, समाज जहाँ उसका सामाजीकरण प्रचलित मानदण्डों के आधार पर किया जाता है, उसे अच्छी लड़की बनाया जाता है। दूसर कक्ष है– उसका विवाहित जीवन, जहाँ पुरुष पति उसे अपनी मनमर्ज़ी से ढालना चाहता है। उसे उपकृत करता है कि देखो तुम्हारे रहस्यों से मैंने तुम्हें अवगत कराया। और तीसरा कक्ष है– स्त्री का अन्तर्मन, जहाँ उसकी निजी और बिल्कुल अलग दुनिया है, जिसके बारे में कोई नहीं जानता, वास्तव में वह किसी को जताना भी नहीं चाहती, क्योंकि उसकी अपनी दुनिया की अवहेलना उसे बर्दाश्त नहीं। यहाँ वह अपने बारे में सोच सकती है। हमारे समाज में अपने बारे में सोचना तो बहुत बुरी बात है और अगर एक लड़की अपने बारे में सोचे – तौबा, तौबा, यह क्या कह दिया। लेकिन लड़की इस कक्ष में सोचती है कि क्यों और कब तक वह उन दो कक्षों की जिंदगी जिएगी जहाँ उसका अपना कुछ है ही नहीं। और वह

---

[12] वही, पृ.37

जानती है कि 'जब तक वह स्वयं चाहे तब तक'। नहीं तो कोई उसे मजबूर नहीं कर सकता। वह अपने बारे में जानने और निर्णय लेने का मन बना रही है, अब तक तो उसने जीवन 'नासमझियों' में गुजारा लेकिन अब नहीं!

संग्रह की शीर्षक कहानी 'मुझे ही होना है बार-बार' स्त्री-चेतना की दृष्टि से अत्यंत सशक्त कहानी है। अब स्त्री ने गहरे आत्ममंथन के बाद खुद को अपनी सम्पूर्णता में जाना है। अपनी क्षमता और विशिष्टाओं के साथ अब वह सम्पूर्ण स्त्री है। तीन पृष्ठों की यह छोटी-सी कहानी अपनी संवेदना में अत्यंत सघन है। आधुनिक चेतना सम्पन्न स्त्री किसी भी तरह के अनचाहे बंधन और सीमाओं को नहीं मानती। वह उन सीमाओं के पार जाना चाहती है, जहाँ जाने की उसे अब तक मनाही थी, और जानना चाहती है कि आखिर क्या है उन सरहदों के पार? अब वह अपने मानकों पर खुद को गढ़ेगी न कि किन्हीं तथाकथित नियंताओं के मानकों पर। अब दबाने पर वह नहीं दबेगी, उसके भीतर की चाहनाएँ और भड़केगी और क्रान्ति को जन्म देंगी। अपनी चेतना के प्रकाश से जाग्रत स्त्री आह्वान करती है समस्त स्त्री जाति का – "आओ मेरे साथ गाओ, वह हिंसक गीत, जिसे एक बार गाने के बाद कोई भी कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। आओ, मेरे अंदर का हिंसक जानवर कराह रहा है अब, इसे सांत्वना के स्वर मत दो। यह भाषा नहीं समझ सकता। इसे मारो चाबुक से, इसे और भड़क जाने दो। जब तक इसके अंदर एक भी लहू की बूँद बाकी है, यह चुप नहीं बैठेगा।"[13] और अपने आपको अपनी सम्पूर्णता में पहचान कर वह गर्वोन्नत हो खड़ी है–सम्भावनाओं से भरी हुई। "'देखो मुझे देखो'... है कोई ऐसा, मेरे जैसा। सिर्फ मैं ही हो सकती हूँ, सिर्फ मुझे ही होना है। मुझे ही बिखरना है टूटकर, मुझे ही बनना है। सृष्टि के अन्त के बाद भी मुझे ही होना है... लगातार... बार.बार..."[14] क्योंकि सृष्टि का पुननिर्माण तो वही करेगी, उसके बिना सृजन हो ही नहीं सकता।

चेतना, सम्भावनाओं और साहस से सम्पन्न यह स्त्री अपनी विकास यात्रा में एक कदम आगे बढ़ती है, जया जादवानी के दूसरे कहानी संग्रह 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' की कहानियों में। अब वह मुखर होती है, बाधाओं से

---

[13] जया जादवानी, मुझे ही होना है बार.बार, इसी नाम के संग्रह से, पृ.77
[14] वही, पृ.78

सामने आकर लड़ती है, अपने निर्णय स्वयं लेती है, और अपनी लड़ाई को जीतकर दिखाती है। उसमें कुछ कर दिखाने का जज्बा है। वास्तव में, यह आधुनिक चेतना सम्पन्न नारी की तस्वीर है जो अपने पांवों में अब किसी भी तरह की बेड़ियाँ नहीं स्वीकार करती। अपने 'स्व' को मारकर अब उसने चीजों को बचाना छोड़ दिया है। कुछ टूटता है तो टूटे अब वह गलत समझौते नहीं करेगी। या तो पुरुष अपनी गलतियों को स्वीकारे या फिर अलग रास्ता चुने। सदियों से अपने 'स्व' को मारकर पुरुष की सत्ता को जिलाए रखने वाली स्त्री अब उससे नजरें मिलाकर अपने बलिदानों का हिसाब माँग रही है। और यदि वह न दे तो? तो वह इस लायक बन चुकी है कि स्वयं को इन सब से मुक्त कर ले।

भले ही उसे इस प्रक्रिया में बार-बार टूटकर बिखरना पड़े, उसे मंजूर है यह लेकिन, अब वह किसी से कुछ भी भीख में नहीं माँगेगी, वह खुद निर्माण करेगी अपनी मनचाही चीजों का, अपने लिए, सिर्फ अपने लिए। वह न ठिठक कर खड़ी रहेगी, न डरेगी, न रोएगी और न ही गिड़गिड़ाएगी। वह निर्णायक लड़ाई लड़ने को कटिबद्ध है। उसे 'गुलामी का आनन्द' नहीं' स्वतंत्रता के खतरों' का स्वाद चखना पसंद है। वह स्वतंत्रता के अहसास को बूँद-बूँद पीना चाहती है, वह अब अपने लिए जीना चाहती है। औरत की इसी नई मुद्रा को विभिन्न कोणों को व्यक्त करती है, "अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' संग्रह की कहानियाँ। और ऐसा करते समय लेखिका पूरी ईमानदारी से आधुनिक स्त्री और उसके प्रश्नों को सामने लाती हैं। वह पूँजीवादी उपभोक्ता संस्कृति और स्त्री को लुभाने वाले उसके हथियारों के प्रति भी सतर्क हैं और स्त्री से इस चकाचौंध के भ्रम में न पड़ने का आग्रह करती हैं। 'अभी -अभी जो चलकर गया है।' कहानी उनकी इसी चिन्ता को व्यक्त करती है।

लेखिका सदियों से गुलामी की कब्र में अचेत सोई स्त्री को जगाती हैं क्योंकि जिस दिन वह जागेगी, पितृसत्ता के लिए वह दिन कयामत का दिन होगा। 'कयामत का दिन उर्फ कब्र से बाहर' कहानी इसी तथ्य को उजागर करती है। साथ ही, दुनिया में दिनों-दिन बढ़ती जा रही विद्रूपता को लेकर स्त्री की चिन्ता को भी व्यक्त करती है। दरअसल इस संग्रह की कहानियाँ पढ़ी-लिखी स्त्री पर ज्यादा केन्द्रित हैं और उसके प्रश्नों पर 'फोकस' डालती हैं। यह जागी हुई स्त्री अपने

चुनाव स्वयं करती है कहानी 'पलाश का फूल' में। ऐसा नहीं कि उसमें स्नेह, प्रेम और करुणा नहीं है। यह सब कुछ है उसके भीतर अब भी। उसे भी परिवार, पति और बच्चे की चाहत है। वह संकीर्णता से परे है। लेकिन अब वह अपने होने को नकारती नहीं। जब कोई चारा नहीं बचता तो वह निर्ममतापूर्वक नकार देती है जिंदगी के सीधे रास्तों को और चुनौतियों का सामना करने को कटिबद्ध हो जाती है। इस स्त्री को आज हम अपने आस-पास देख सकते हैं। रुढ़िजर्जर, सामंती मानसिकता से ग्रसित लोग भले ही हाय-तौबा मचाएँ, लेकिन स्त्री का यह कदम उसके मनुष्य बनने की और गरिमा और सम्मान को प्राप्त करने की यात्रा में अपरिहार्य है।

अपूर्वा जैसी पढ़ी-लिखी स्वाभिमानी और महत्त्वाकांक्षी स्त्री 'जिसके पास कॉन्वेंट की शानदार सर्विस है और जिसका सपना है–भविष्य में अपना स्कूल चलाना।' "महत्त्वाकांक्षा.... कुछ कर सकने की कूवत...अकेले लड़ने, रहने का साहस... ।"[15] विवाह भी वह अपनी मर्जी से करती है, अपने पिता के विरुद्ध जाकर। तीन बच्चें के पिता, विधुर रोहित से। नौकरी छोड़ उसके साथ उसके घर जाकर उसे मिलता क्या है– बच्चों की उपेक्षा, घर वालों का तिरस्कार। और रोहित– उसने तो समझना ही नहीं चाहा कि अपूर्वा के भीतर क्या चल रहा है? वह शाम को फैक्टरी से लौटता है हाँ, वह पति होने का कर्त्तव्य बिना नागा हर रात निभाता है– लेकिन मानसिक घनिष्ठता के बिना शारीरिक सम्बंध अपूर्वा नहीं चाहती। आखिर, सहते-सहते तीन साल बाद उसके सब्र का बाँध टूट जाता है। रोहित की चुनौती स्वीकार कर वह चली आती है उसके घर से।

दो महीनों की जद्दोज़हद के बाद नौकरी, ट्यूशन, फिर बिल्डिंग की तलाश और बैंक से लोन और तब खोल पाती है– अपना स्कूल। आज पाँच साल हो गए उसके संघर्ष को। रोहित को वह अभी भी चाहती है, रोहित भी चाहता है उसे। लेकिन वह जब भी अपूर्वा के पास आता है हर बार उनके भीतर जमी बर्फ़ कुछ और सख्त हो जाती है। दोनों में से कोई नहीं कह पाता अपने मन की बात। फिर भी अपूर्वा खुश है जिंदगी से। उसने अपने आपको आत्मपीड़ा का शिकार नहीं होने

---

[15] जया जादवानी, पलाश का फूल, अंदर की पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.16

दिया। "और चाहा उसका दर्द विध्वंसकारी नहीं, सृजनात्मक बने। करामाती... कभी दर्द को वज़न की तरह नहीं ढोया, छाती से लगाया... सजाया... सँवारा और अपना दोस्त बना लिया।"[16]

यह चमत्कार अचानक नहीं हुआ स्त्री के साथ। इसके पीछे लम्बी जद्दोजहद है, तब जाकर उसने संचित किया है यह आत्मविश्वास। कुछ कर दिखाने का जज्बा उसे उसकी पहचान दिलाने में मददगार साबित हो रहा है। यह कहानी अपूर्वा के बहाने हमारे समाज की सुशिक्षित, जागरुक स्त्री की तस्वीर बयान करती है। रोहित जैसे पुरुष जो भीतर -भीतर औरत की कूवत का लोहा मान चुके हैं लेकिन उनका अहं उन्हें मुखर होकर स्वीकारने नहीं देता, जिस दिन वे यह सच सहजता से स्वीकार कर लेंगे वह दिन मानव-समाज के लिए उत्सव का दिन होगा। अभी 'रोहित' झिझक से भरा ठिठका खड़ा है।

समाज की मानसिकता पुरुष की मानसिकता का पर्याय है। एक हँसती-खेलती बच्ची जिसने पूरा बचपन भी नहीं जिया और जिसे बात-बात पर सुनना पड़ता यह मत करो, वह मत करो– अब तुम बड़ी हो गई हो। कोई नहीं जानना चाहता कि इन बातों का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा? समाज, परिवार और पुरुष-हर कोई अपने हिसाब से उसे गढ़ने की फ़िराक में हैं ('कॉकरोच' कहानी।

'परिदृश्य' कहानी में लेखिका एक मध्यमवर्गीय स्त्री की स्थिति को कुछ इस तरह पेश करती हैं कि कहानी हर किसी स्त्री को अपनी जिंदगी की हकीकत बताती हुई लगती है। साथ ही परिवार संस्था की सच्चाई एक स्त्री की नज़र में क्या है यह भी यह कहानी बखूबी बयान करती है। एक आज्ञाकारी पत्नी और एक पारम्परिक पुरुष पति–जिसे या तो पत्नी पर हुकूमत चलाना आता है या उसके काम में नुस्ख निकालना। 'परिदृश्य' कहानी में एक घरेलू स्त्री की रोजमर्रा की जिन्दगी का चित्र ज्यों-का-त्यों उकेरकर लेखिका ने ऐसी स्त्रियों के साथ होने वाले अन्यायपूर्ण व्यवहार को सामने रखा है। रोजमर्रा की जिन्दगी मध्यमवर्गीय परिवारों में कुछ ऐसे शुरू होती है–

"सुनो, खाना तैयार है।"

"हाँ"

---

[16] वही, पृ.15

"पानी गरम रख दिया है बाथरुम में।"

"हाँ"

"कमीज़ का बटन लगा दिया है।"

"हाँ"

"प्रेस भी कर दी।"

"कर देती हूँ"

"टिफिन जल्दी बना दो, देर हो रही है।"

"बना देती हूँ"

"रोहित को आज स्कूल छोड़ देना, मैं जल्दी में हूँ"

"छोड़ दूँगी।"

"रंजू को डॉक्टर को भी दिखा देना, हो सकता है शाम को देर से लौटूँ।"

"दिखा दूँगी।"

"ब्रीफकेस तैयार है।"

"तैयार है।"

इतना करने के बाद भी वह निकम्मी ही मानी जाती है।

"ये शेल्फ इतनी गंदी क्यूँ है? क्या करती रहती हो तुम सारा दिन घर पर? कुछ नहीं होता तुमसे....।"

"...." पत्नी की कोई प्रति क्रिया नहीं।

"दोस्तों और बॉस को पार्टी दी है– संम्भाल लोगी।"

"हाँ, सम्भाल लूँगी" "मीनू मैं बना दूँगा"।[17] मतलब, वह एक अदद नौकरानी है, बल्कि वह भी नहीं, क्योंकि उसके काम की तो तनख्वाह भी नहीं मिलती। इसके बावजूद सारा दिन दूसरी औरतों की खूबियों का बखान और उसे नीचे दिखाना। लेकिन फिर जो कुछ कहानी में घटता है वह पहले नहीं घटता था, वह नया है और कहीं-कहीं घटने भी लगा है। इस बेचारी सी लगने वाली स्त्री ने खुद के बारे में सोचना शुरु कर दिया है। खुद को बदलना भी। वह स्त्री 'पढ़ती' है, पति सुनकर चौंक जाते हैं। वह डांस सीखती है, गाना सीखती है और वह सभी कुछ जिसके कारण वह अब तक पिछड़ी समझी जाती रही है। पति जब-तब व्यंग्य करते रहते हें। 'तुम और यह सब करोगी'–वाली मुद्रा में। यह औरत एक दिन नौकरी ढूढ़ लेती

[17] जया जादवानी, परिदृश्य, 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी-संग्रह से), पृष्ठ-53

है तो पति पूछते हैं– "रहने का भी बंदोबस्त कर लिया है।"[18] चूँकि पुरुष को यह सब सुनने या देखने की आदत नहीं है, इसलिए वह इस सब को अपनी अवाज्ञा मानता है, और यह उसे कैसे बर्दाश्त होगा? अब वह आखिरी बाण चलाता है "अच्छा एक पुरुष भी तो नहीं ढूँढ़ लिया लिया है?" लेकिन स्त्री अब ऐसे पुरुष के साथ रहने से बेहतर समझती है–अकेली रहना। पति द्वारा कहने पर कि जा तो रही हो लौटकर मत आ जाना। वह जो कुछ कहती है वह परिवार संस्था के घिनौने सच को साफतौर पर सामने ले आता है। "जीती हुई औरत कभी घर नहीं लौट सकती। हमारे समाज में घर एक राहत की साँस लेने की जगह नहीं, जाने कितनी दुविधाओं, मुश्किलों, चिन्ताओं, परेशानियों कुण्ठाओं का अजायबघर है। यह पाँव की ऐसी बेड़ी है जिससे एक बार छूटने के बाद कोई वापस नहीं आना चाहेगा। यह सिर्फ हारी हुई औरतें पनाह लेती हैं क्योंकि फिर वे इसका सिवा और कहाँ जाएँगी?"[19] यह कहानी किसी भी संवेदनशील स्त्री को झिंझोड़कर कर रख सकती है, जो उस घर को 'अपना' कहते नहीं थकती–जहाँ उसका कुछ है ही नहीं।

जबकि 'काकरोच' कहानी हमारे समाज की उस मानसिकता को उद्घाटित करती है जो मासूम लड़कियों का बचपन वक्त से पहले ही खत्म कर देती है। अपनी गलतियों को छुपाने के लिए बच्चों को डाँटा-फटकारा जाता है। यही इस कहानी में लेखिका ने स्पष्ट किया है। अपने पापा के लाड़-दुलार में बिना माँ की बच्ची ने कभी कोई कमी महसूस नहीं कि लेकिन फिर धीरे-धीरे पापा बदल गए वो /प्यार-दुलार उसके हिस्से में न रहकर एक औरत ने बाँट लिया। और कक्षा आठ में पढ़ने वाली वर्षा ने जब अचानक पापा को उनके कमरे में एक औरत के नग्न शरीर पर सरकते हुए देखा, तो पता नहीं क्यों उसके दिमाग में पापा (पुरुष) की जगह कॉकरोच की छवि बैठ गई। गलती उसकी नहीं थी लेकिन पापा ने उसे जोरदार थप्पड़ मारा कि वह अब बड़ी हो गई और उसे तमीज़ सीखनी चाहिए। फिर जब सहेली के यहाँ कुछ लड़कों ने उसके शरीर को लेकर भद्दे इशारे और टिप्पणी की, तो यह कॉकरोच की छवि और पक्की हो गई। ऊपर से सौतेली माँ का

---

[18] वही, पृ.60
[19] वही, पृ.60

दुर्व्यव्हार। धीरे-धीरे एक लड़की की पूरी की पूरी दुनिया बदल गई और किसी को भनक तक नहीं लगी। जब उसकी शादी हुई, और पहली रात को पति ने उसे छुआ, चूमा तो उसके भीतर वर्षों से जमीं नफरत पिघलने लगी। वह पति के प्यार को महसूसना चाहती है, उसे वक्त की जरूरत है कि उसके भीतर का जंगल छँट जाए। लेकिन पहली ही रात को पत्नी के शरीर पर कब्जे की मानसिकता का मारा उसका पति यह नहीं समझ सका। पति प्रभाकर के चुम्बनों से उसके शरीर में सिहरन हो रही है, वह उससे कुछ कहना चाहती है, अपने मन के भीतरी कोनों में उसे शामिल करना चाहती है, "देखो प्रभाकर जल्दी न करो। जिन्दगी सिर्फ आज की रात नहीं। मुझे समझने की कोशिश करो। मैं जिन राहों पर इतनी दूर आ गई हूँ, उन पर से लौटने को मुझे वक्त चाहिए। मुझे जानने दो कि नफरत कभी भी मोहब्बत से बड़ी नहीं हो सकती। मुझे इस एक हक की तरह पाने दो। कर्ज़ की तरह नहीं। उसे लगा वह कुछ भी नहीं कह पा रही।"[20] और जब वह अपनी सोचों से बाहर आई तो खुद को पूर्णतया नग्न देखकर भौचक रह गई।

तनाव और अवसाद उस पर तारी होने लगता है। इस सबसे अनजान उसका पति उसकी देह को पाने को बेताब है, अब वह उसके शरीर की गहराई में आख़िरी डुबकी लगा रहा है, और वर्षा अपने भीतर के अंधेरों में फिर खोती जा रही है, वह मुक्त होना चाहती है, लेकिन प्रभाकर की पकड़ उस पर और सख्त होती जा रही है। "उसे लगा एक गंदा, घिनौना कॉकरोच उसके नंगे बदन पर रेंग रहा है।"[21]

वह गहरी वितृष्णा, जुगुप्सा और नफरत से भरकर अपने पूरे ज़ोर से प्रभाकर को धक्का दे देती है। प्रभाकर हैरान है, और वर्षा? वह तो वहाँ से न जाने कितनी दूर चली गई है, जो शायद अब कभी न लौटे। काश, कि उसका बचपन ऐसा न होता या अगर उसके पति ने पहले उसे जानने-समझने की कोशिश की होती, तो शायद पुरानी वर्षा धीरे-धीरे वापस जाग उठती। दरअसल स्त्री भीतर से बाहर की ओर मुड़ती और पुरुष बाहर से भीतर की ओर। प्रायः तो वह 'बाहर' को ही सब-कुछ समझ लेता है। यह कहानी हमारे समाज का ही एक सच है। स्थिति और

---

[20] जया जादवानी, कॉकरोच, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है (कहानी संग्रह से) पृ.30
[21] वही, पृ.30

भयानक न हो उससे पहले पुरुष को खुद में और अपनी मानसिकता में बदलाव लाना पड़ेगा। नहीं तो न जाने कितनी 'वर्षाएँ' ऐसे ही लाश बनती रहेंगी, और पुरुष भी अधूरा और अभिशप्त ही रह जाएगा, सम्भावनाओं से परे।

धार्मिक रुढ़ियों और पाखण्डों में फँसे समाज पर केन्द्रित है कहानी 'मुक्ति'। स्त्री इन रुढ़ियों में सबसे ज्यादा जकड़ी है और इसके लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार है–पितृसत्तात्मक समाज। हर ओर से असुरक्षित और असहाय स्त्री न जाने किस 'मुक्ति' की तलाश में सारी दुनिया छोड़कर मंदिरों और आश्रमों में पड़ी रहती है। उसके पास यह सोचने-समझने की शक्ति ही नहीं है कि अगर दुनिया ईश्वर ने बनाई है तो उससे इतनी दूरी क्यों? वास्तविक धर्म तो ईश्वर की बनाई इस दुनिया को सुन्दर बनाने में है। और यदि उसमें यह समझ आती भी है तो सामाजिक असुरक्षा के डर से वह यह एक क़ोना खोज लेती है।

एक औरत अपनी तीन बेटियों के साथ यहाँ रहती है, सब कुछ ईश्वर पर छोड़कर, आखिर वह जाए भी कहाँ, आर्थिक तंगी, बेटे-बहू का दुर्व्यवहार और तीन बिन ब्याही बेटियाँ। कम से कम यहाँ रहने का ठिकाना और रोटी तो मिल जाएगी। लेकिन, बड़ी बेटी मनु जो हर व्यवस्था को तर्क की कसौटी पर तौलती है, वह नहीं समझ पाती कि सुबह-शाम की आरती-पूजा और दिन रात मंदिरों में हाड़तोड़ मेहनत के बाद क्या मिलता है इन्हें? कहाँ है भगवान और अगर है तो महंतो, मठाधीशों की शक्ल में इन बिचौलियों का क्या काम है? दुनिया भर को माया, मोह से दूर रहकर ईश्वर की सेवा करने का उपदेश देने वाले ये महंत, मठाधीश खुद माया में सिर से पाँव तक डूबे रहते हैं यह कोई क्यों नहीं देख पाता?

महोत्सव के दिन एक आधुनिक चेतना-सम्पन्न लड़की महंत से कुछ प्रश्न करती है और वे अकबका जाते हैं, वह चिढ़कर वहाँ की सारी औरतों पर एक गहरी नज़र डालती है ओर जाते-जाते नायिका 'मनु' के भीतर चलती उथल-पुथल को और भड़का जाती है कि मुक्ति जीवन से भागने में नहीं उसके संघर्षों का सामना करने में है। जीवन के हर क्षण को, हर सुख को जीने में है। एक दिन हमेशा लाचार दिखने वाली माँ अपनी बेटी के सपनों और खुशियों को समझकर उसे वहाँ से भाग जाने को कहती है और रास्ता भी स्वयं ही बताती है वहाँ से भागने का। हमारे समाज में धर्म के नाम पर जो पाखण्ड खड़ा किया गया है और जिसकी

सबसे बड़ी शिकार स्त्री है, उस पर लेखिका ने बहुत ही गहराई से विचार किया है। जया जादवानी के यहाँ मनुष्य धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है और उनकी कहानियाँ इस बात की गवाही देती है– बहुत ही सधे और ठोस शब्दों में।

हमारे सभ्य कहलाने वाले समाज के सभ्य पुरुषों की हकीकत को बयान करती है कहानी 'बाजार'। यहाँ एक वेश्या की नजरों से उसकी दुनिया की जाँच - पड़ताल की गई है। सीलन भरी गंदी कोठरियों में जीवन बिताने को अभिशप्त ये स्त्रियाँ बाहर की दुनिया देखने का मौका कभी-कभी ही पाती है–जब इन्हें वर्ष में एक बार रूप के मेले में ले जाया जाता है और वस्तुओं की तरह विभिन्न स्टालों पर सजाया जाता है। उस वक्त समाज के नियंता सभ्य पुरुषों का असली चेहरा सामने आ जाता है। यह स्त्री-स्त्री नहीं सिर्फ एक 'माल' है, जैसा माल, वैसी कीमत। लेने वाले अपनी हैसियत और जरूरत के अनुसार उनका सौदा करते हैं। "तम्बू की दीवार से सटी कुर्सियों पर दुनिया के तमाम सभ्य लोग बैठे थे। जिन्होंने इतिहास रचना था और भविष्य निर्धारित कर रहे थे। जो ये न होते तो इस निर्जन बियावान में हमारा क्या होता?"[22]

लेखिका का व्यंग्य पूरे पुरुष समाज और व्यवस्था पर है–जिन्होंने अपनी ही दुनिया के एक हिस्से को अपनी वासना-पूर्ति के लिए नर्क जैसा जीवन जीने पर मजबूर किया है। फिर भी वे सभ्य हैं और उनकी गंदगी को अपने में धारण कर समाज को व्यवस्थित रखने वाली स्त्री कुलटा है! स्त्री एक खूबसूरत, सुखी और संतुष्ट घरौंदे की तलाश में भटक रही है, जो उसने पहले-पहल पुरुष के साथ मिलकर बनाया था, लेकिन पुरुष को अपनी उपलब्धियों का नशा कुछ इस तरह चढ़ा कि वह सब कुछ जीत लेना चाहता है। स्त्री और पुरुष की इन्हीं अलग-अलग लालसाओं को दर्शाती है कहानी–'तलाश जारी है।'

कहानी 'मैं मनुष्य हूँ' के माध्यम से लेखिका ने अल्ट्रासाउण्ड और एमीनियोसेंटोसिस जैसी तकनीकों के माध्यम से अजन्मी कन्या शिशुओं की हत्या जैसे गंभीर सवाल को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उठाया है। कहीं न कहीं सवाल उस माँ से भी है जो पुत्र के लालच में अजन्मी लड़कियों को मौत के घाट

---

[22] जया जादवानी, बाजार, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है (कहानी संग्रह से)पृ.

उतारने में खुद भागीदारी करती है। एक बच्चा जो गर्भ में है, अपनी जननी की हर गतिविधि से प्रभावित होता है। वह चाहता है माँ उसके होने को महसूस करे। लेकिन उसकी सोच से बेखबर जननी शराब और सिगरेट के नशे में चूर डांस फ्लोर पर थिरक रही है। "एक तरल-सी चीज़ और तेज़ गंध से सरोबोर मेरा बजूद हिचकोले खाने लगता है। एक धुँआ से चारों ओर फैल रहा है, मैं उससे परे होना चाहता हूँ, पर वह मुझमें समाया-सा जा रहा है। मैं जोर से चीखना चाहता हूँ। बस करो, रूक जाओ। पर मुझसे कुछ भी नहीं हो पाता। मैं विवश खुद को ढीला छोड़ देता हूँ।"[23]

गर्भ में पल रहा एक बच्चा, जिसे नहीं पता कि वह लड़का है या लड़की, जननी की अपने प्रति घृणा और तिरस्कार भरी आवाजें – "नहीं, नहीं यह नहीं हो सकता। तीसरी लड़की नहीं चाहिए मुझे। इसे निकालो मेरे जिस्म से...]"[24] सुनकर चौंकता जाता है। "मेरे अस्तित्व का पता नहीं। मेरे होने से कहीं कुछ नहीं बदला, सब कुछ वैसा ही है। मैं महज आकस्मिक हूँ। मैं जरूरी नहीं हूँ। अनामंत्रित आ गई हूँ--- मात्र दुर्भाग्यवश किसने भेजा है मुझे यहाँ।"[25] आश्चर्य कि गर्भस्थ शिशु को बाहर के उजाले देखने से पहले ही पता चल जाता है कि वह एक लड़की है–अवांछित, अनिच्छित! यह सारी घटना उसे सोचने पर मजबूर कर देती है कि क्या वह अन्य मनुष्यों की तरह एक मनुष्य नहीं है?

कहानी 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है' के माध्यम से लेखिका एक ऐसी सचेतन स्त्री की तस्वीर प्रस्तुत करती है जिसने सामाजिक मान्यताओं से परे अपने गर्भ से बेटी के जन्म का तहेदिल से स्वागत किया है। 'मैं मनुष्य हूँ' कहानी में गर्भ में पल रही बेटी को अपने जिस्म से तुरन्त निकालकर बाहर करने को व्याकुल पितृसत्तात्मक मानसिकता वाली स्त्री के बरक्स यह सजग स्त्री बच्ची को जन्म देकर जिस असीम आनंद का अनुभव करती है, उस अनुभव को लेखिका ने शब्द देकर जीवंत बनाया है। 'लेबर पेन' शुरू होने से लेकर बच्चे के जन्म लेने तक की सम्पूर्ण घटना को लेखिका ने जिस खूबसूरती से शब्दों में बाँधा है, वह

---

[23] मैं मनुष्य हूँ, 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' (कहानी संग्रह से) पृ.78
[24] वही, पृ.79
[25] वही, पृ.80

हिन्दी साहित्य में इस कहानी को बेजोड़ साबित करता है। "मुझे यकीन नहीं आ रहा था कि मेरे अंधेरो से ऐसी नदी भी निकल सकती है, जिसके तटों पर फिर पूरे के पूरे साम्राज्य बसाए जाएँगे। कोई नहीं जानता कि अंदर के पानियों में जो सपना काँपता है, कब असलियत का रूप लेगा, जब लेता है तो .....।"[26] वास्तव में यह काँपता हुआ सपना जब हकीकत में रूप ग्रहण कर बाहर आता है तो इसके सर्जक होने का गौरव और सुख इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शामिल हुए बिना नहीं जाना जा सकता है।

स्त्री-प्रश्नों और स्त्री-पुरुष सम्बंधों का विश्लेषण करने के लिए जया जादवानी ने किस परिवेश को चुना है और समाज में स्त्री की कैसी और कितनी छवियाँ हैं, इस दृष्टि से कहानियों का अध्ययन आवश्यक है.....

---

[26] जया जादवानी, 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' उसी शीर्षक–संग्रह से पृ.127

2.3 परिवेश और छवियाँ

जया जादवानी की कहानियों में व्यक्त परिवेश कोई मनमानी कल्पना या दूसरी दुनिया का चित्र नहीं है। वह हमारे समाज का यथार्थ रूप है। स्वतंत्रता के बाद की बदली हुई सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियों ने जहाँ स्त्री की स्थिति में बदलाव की सम्भावना पैदा की है, वहीं दूसरी ओर हमारे समाज के पितृसत्तात्मक सामंती मूल्य स्त्री को जकड़े हुए हैं। दलित, आदिवासी, श्रमिक तथा सामाजिक रूप से निचले पायदानों पर स्थित स्त्री की तो बात ही क्या, यहाँ तो पढ़ी लिखी, आर्थिक रूप से स्वनिर्भर स्त्री की भी पीड़ा और यातनाओं की कोई सीमा नहीं है। सामंती संस्कारों की जकड़न से अभी वह पूरी तरह आज़ाद भी नहीं हो पाई थी कि पूँजीवादी संस्कृति ने भी उसके लिए जाल बिछाना शुरू कर दिया।

बदली हुई परिस्थितियों ने जहाँ स्त्री के लिए ज्ञान के दरवाजे खोले, आर्थिक रूप से स्वनिर्भरता के अवसर उपलब्ध कराए वहीं स्त्री की इस बदली हुई स्थिति के कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में अधिक तनाव आया है। क्योंकि पुरुष स्त्री की बदली हुई भूमिका को पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर पा रहा है। वह अब भी स्त्री को अपनी सुविधानुसार ढील देना चाहता है– उसे क्या पढ़ना चाहिए, कितना पढ़ना चाहिए, कहाँ-कहाँ और कब जाना चाहिए, क्या पेशा अपनाना चाहिए, किस तरह के कपड़े पहनने चाहिए, और कितना सोचना चाहिए – सब कुछ पितृसत्ता ही नियंत्रित करती है। प्रायः तो उसकी कमाई पर भी उसका नहीं, घरवालों का हक होता है। और वह अपनी कमाई भी कैसे खर्च करे यह भी पुरुष ही तय करते हैं। वह बाहर भी संभाले और घर भी। फिर भी उसकी कोई अहमियत नहीं। ऐसी मानसिकता वाले समाज में स्त्री जब अपनी स्थिति के बारे में विचार करती है तो उसे असहनीय पीड़ा और बेचैनी से गुजरना पड़ता है।

किसी भी समाज में परम्परा और परिवर्तन दोनों को अपनाने की जद्दोजहद सबसे ज्यादा मध्यमवर्ग में ही होती है। इसी अहापोह में वह न तो पुरातन को पूरी तरह नकार पाता है और न ही नवीन को स्वीकार पाता है। वह बाह्य रूप से जितना आधुनिक बनने का दिखावा करता है, भीतर से उतना ही रुढ़िग्रस्त होता है। इस तरह की मानसिकता वाले समाज में एक ओर स्त्री से आधुनिक होने की माँग की जाती है तो दूसरी ओर रुढ़िजर्जर परम्परागत संस्कारों को ढोने की। जया

जादवानी की कहानियाँ प्रायः इसी मध्यमवर्ग की दोहरी मानसिकता के बीच पिसती स्त्री का चित्र खींचती हैं। शिक्षा ने जहाँ स्त्री को सोचने-समझने की शक्ति दी है, वहीं वास्तव में अपनी स्वतंत्रता की असम्भवता को लेकर वह परेशान है। उसके पास दृष्टि है लेकिन वह मनचाहा नहीं देख सकती, दिमाग है लेकिन अपने लिए नहीं सोच सकती, सोच भी ले तो व्यक्त तो बिल्कुल नहीं कर सकती। जया की कहानियाँ "समाज में स्त्री की जगह तलाशती हैं और स्त्री-नियति के ठिठके स्वरों की अनुगूँज में खत्म नहीं होतीं बल्कि उसके वाज़िब गुस्से को शब्दों के अर्थ में बदल देती हैं – कब्र में सोई हुई औरतों का आदमी मन-चाहा इस्तेमाल करता है। औरत भी अपना इस्तेमाल होने देती हैं। आदमी को तकलीफ सिर्फ तभी होती है, जब वह अपनी कब्र से जाग जाती है। यह जागना ही स्त्री की असली मुक्ति है।"[27]

यह जागी हुई स्त्री जब अपने आस-पास की अन्य स्त्रियों पर नजर डालती है, जो अब भी अपने होने से बेखबर बने बनाए पैमानों पर चल रही है, तो वह पुरुष मानसिकता के प्रति गहरी वितृष्णा से भर उठती है। इस संदर्भ में कहानी 'कयामत का दिन उर्फ़ कब्र से बाहर' अपने प्रतीकात्मक अर्थ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है "यह सब अपनी-अपनी कब्रों में सोई हुई औरतें हैं– सदियों से अपने से बेखबर अनगढ़ पत्थर, किसी ने पूजना चाहा, 'पटा' लिया। जो भी 'मेकर' होना चाहता है, हो सकता है। 'मल्टी परपज़' जिस्म लिए वह हर हाल में खुश है। तकलीफ सिर्फ तभी होती है, जब वह अपनी कब्र से जाग जाती हैं।"[28]

स्त्री की यह जाग्रति ही उसकी मुक्ति की दिशा तलाशेगी। जया जादवानी के प्रथम दो कहानी संग्रहों –'मुझे ही होना है बार-बार' और 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' में स्त्री की यही छवि दृष्टव्य है। मध्यमवर्गीय समाज में एक ओर स्त्री जड़ संस्कारों से बँधी है तो दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा एवं मूल्य उसे इनसे मुक्त होने को उकसाते रहते हैं। इसी वजह से उसके मन में अपनी स्थिति को लेकर एक अजीब बेचैनी, निराशा और अजनबीपन की भावना भर जाती है। एक लम्बे द्वन्द्व के बाद वह जान पाई है कि पितृसत्तात्मक समाज में माँगने से उसे कुछ

---

[27] जया जादवानी, 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है', पुस्तक के फ्लैप पर डॉ0 सुमीता कुकरेती का वक्तव्य

[28] जया जादवानी, कयामत का दिन उर्फ़ कब्र से बाहर, अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ.6

नहीं मिलने वाला–न अधिकार न स्वतंत्रता। सो, वह अपने आपको तैयार कर रही है–अपनी लड़ाई खुद लड़ने हेतु।

'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों में ऐसी ही स्त्री की तस्वीर है जो अपने अर्न्तमन के स्तर पर काफी विचार कर चुकने के बाद अपनी मुक्ति हेतु छटपटा रही है। वह बाह्य स्तर पर अपनी स्वतंत्रता की असम्भवता से भी परिचित है। 'शाम की धूप में' की स्त्री अपनी स्थिति से दुःखी है परन्तु कभी विद्रोह नहीं कर पाती क्योंकि, उसे इस तरह सोचने का मौका नहीं मिला।

हमारे समय और समाज की हर स्त्री इन कहानियों में मौजूद है– वह जो अपने होने से बेखबर है, वह जिसे खबर तो है लेकिन जो परिस्थितियों के दबाव में अपने आप को नकार रही है। वह, जिसने अपनी देह और मन को एक साथ स्वीकार किया है। वह, जो जान गई है कि पितृसत्तात्मक समाज उसे खुद के लिए कुछ नहीं चुनने देगा, और जिसने संस्कारों की चादर उतार फेंकने की ठान ली है। जो, हव्वा की बेटी बनकर प्रेम करती है, और व्यवस्था की समीक्षा करती है। एक लड़की जो बड़ी हो रही है और जिसे सपने देखने की मनाही है। वह स्त्री, जो अपने लिए एक सहचर चाहती है। वह, जो अपने 'स्व' को पहचान कर संघर्षों का सामना करती है और अपने अस्तित्व को प्रमाणित करती है ('पलाश का फूल')। वह, जो अब तक पितृसत्तात्मक संस्कारों को ढोए जा रही थी – एक आदर्श बेटी, पत्नी, माँ बनकर और अब वह चुनौतियों को स्वीकार रही है अपने को बदल रही है ('परिदृश्य' कहानी में माधवी)। वह जिसके भीतर की इच्छाएँ, कामनाएँ और जीने की ललक सब कुछ खत्म हो गया – हमारे समाज की रुढ़िजर्जर पितृक मानसिकता के कारण ('कॉकरोच')। वह, जो जिन्दगी बिता देती है पति, बच्चों और परिवार को बनाने में फिर भी उसकी कोई अहमियत नहीं ('शाम की धूप में')। वह जो समाज द्वारा उसके 'स्व' को मारकर आदर्श के साँचों में ढलने से इनकार कर रही है क्योंकि वह जान गई है कि यह यथास्थिति तभी तक है जब तक वह चाहे, नहीं तो कोई उसे रोक नहीं सकता ('तीसरा कक्ष')। वह जो अपने उत्पीड़न, शोषण के प्रति विद्रोह की मुद्रा में खड़ी है (मुझे ही होना है बार-बार')। वह, जो अपने समय की और सुविधा भोगी मानसिकता की समीक्षा करती है। वह, जो स्त्री के संदर्भ में चली आ रही पितृसत्तात्मक नैतिकता का मानदण्ड तोड़कर नई परिभाषाएँ

गढ़ रही है। ('वहाँ मैं हूँ')। जिसे अपना शरीर 'अंधेरों की दुनिया' या 'गहरी काली खोह' नहीं लगता क्योंकि उसने अपनी सर्जनक्षमता का महत्त्व जान लिया है ('अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है')। वह, जो स्त्री होकर भी पितृसत्तात्मक मानसिकता की वाहक बनी हुई है और कन्या-भ्रूण को गर्भ में ही मार देना चाहती है क्योंकि उसे 'बेटा' चाहिए ('मैं मनुष्य हूँ')। वह जो समाज की वर्जनाओं से डरी-सहमी अपनी इच्छाओं को मार रही है और किसी की हत्या की सहअपराधिनी भी है 'जो नहीं है, वह'। वह, जो मनुष्य होने की जिम्मेदारियों को निभाती है ('फिर-फिर लौटेगा')। वह जो सामाजिक उपेक्षा और परनिर्भरता के कारण मंदिरों और आश्रमों में पड़ी अपना जीवन बर्बाद कर रही है, न जाने किस मुक्ति की तलाश में ('मुक्ति')। वह, जो सभ्य पुरुषों की वासना तृप्ति के लिए बिछती है, लेकिन अपनी सीमाओं के भीतर सब-कुछ के बारे में गहन चिन्तन करती है ('बाजार')। वह, जो माँ बनकर पहली बार अपने पूर्णतया नए रूप से साक्षात्कार करती है (रुपान्तरण)।

वास्तव में यह हमारे समाज में स्त्रियों की विभिन्न तस्वीरें हैं। 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियाँ स्त्री की जाग्रत मानसिक चेतना की द्योतक हैं। कहानी 'वहाँ मैं हूँ' उच्च मध्यमवर्ग में जीने वाली ऐसी स्त्री की वास्तविकता को सामने लाती है, जिसके जीवन में प्रेम मर चुका है। वह यंत्रवत वह सारे काम करती है जिसकी उम्मीद इस समाज में एक पत्नी से की जाती है। वह सजती-सँवरती है, पति के साथ पार्टियाँ 'अटेण्ड' करती है। अपने रिश्ते में प्रेम होने का दिखावा करती है। वह पति की इच्छा का पालन करती है, लेकिन सबकुछ बिना मन के–सिर्फ देह के स्तर पर। मन तो उसका यहाँ शामिल ही नहीं है कहीं। दरअसल वह पितृसत्ता द्वारा निर्मित 'आदर्श स्त्री' के साँचे में फिट रहना चाहती है लेकिन उसका मन इस स्थिति का विरोध करता है। वह इसके लिए भी रास्ता खोज लेती है – मन को अलग कर वह देह को यह सब भुगतने के लिए छोड़ देती है। लेकिन कब तक? एक दिन उसे अपनी देह का भी ख्याल आता है, वह अब अपनी देह और अपने मन दोनों को साथ रखेगी– "मैंने अपनी देह के सर पर हाथ रखा... तुम्हारी भूख मेरी है, तुम्हारी प्यास मेरी। तुम्हारी चाहना, तुम्हारी लालसा, तुम्हारे पाप, तुम्हारे द्वेष, तुम्हारा नरक, तुम्हारी क्षुद्रता, तुम्हारा देवत्व, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारे आँसू मेरे हैं हम क्यूँ अलग-अलग रहकर अपने वजूद को बिखर जाने दें। कुछ भी पाप नहीं है, क्योंकि

कुछ भी पुण्य नहीं है। यह सत्य आज मैं पहली बार स्वीकार करती हूँ।"[29] स्त्री में यह सोच शिक्षा के चलते पैदा हुई है। हालाँकि, अभी वह पूरी तरह बदलाव की मुद्रा नहीं अपना पाती है क्योंकि सामाजिक- पारिवारिक दुश्वारियाँ उसे डराती हैं। फिर भी वह उस एक क्षण को शिद्दत से लेना चाहती है–जिसमें उसने खुद को सम्पूर्ण अच्छाईयों-बुराईयों और लालसाओं के साथ पहचाना और स्वीकारा है।

कहानी में उच्चमध्यमवर्गीय समाज को दिखाने हेतु लेखिका अत्यंत सशक्त ढंग से परिवेश रचती हैं, "बड़ी खूबसूरत पार्टी है। शराब, शबाब, कबाब, स हुई प्लेंटे – सज़ा हुआ हॉल, सजे हुए लोग, इधर से उधर जाते हुए, एक-दूसरे से टकराते-शोर करते, हाथ मिलाते, चियर्स करते, एक-दूसरे को चूमते, देह से देह टकराती, चिनगारियाँ निकलती, चिनगारियों के फूटने का क्षणिक सुख, एक लम्बे सुख का ख्वाब देता है। – उस ख्वाव की ताबीर पर थिरकते हुए लोग।"[30] और इन सबके पीछे छिपा नकलीपन, दिखावा – जो आज मध्यमवर्ग की विशेषता बन गया है।

'लड़की आसमान में' कहानी की 'लड़की' – किसी भी लड़की को अपनी ही प्रतिरूप लग सकती है। बड़े होने के साथ ही जिसके सपने खत्म हो जाते हैं, यथार्थ की तेज बारिश में सब बह जाता है। वह बदल रही है लेकिन कोई उसे नहीं समझ पा रहा। माँ समझती है, लेकिन उसे बरजती भी है सपने देखने के लिए। हमारे समाज की विडम्बना है कि एक औरत को ही तैयार करती है पितृसत्ता, दूसरी औरत के खिलाफ। कभी जबर्दस्ती तो कभी प्रलोभन देकर।

सामाजिक यथार्थ उसके सपनों के एकदम विरुद्ध है "वह धरती का एक टुकड़ा है, वहाँ एक वीरान-सा घर है, पीली दीवारों से घिरा, गोबर से लिपा, एक टूटी सड़क और एक बीमार दरवाजा... एक टूटी खिड़की और उस खिड़की से टिका, बाहर देखता उसका मासूम चेहरा और उसकी बाँह पर सख्ती से टिका माँ का हाथ,..... सख्त, खुरदुरा, काला हाथ... बर्तन माँजने, कपड़े फीचने, गोबर लीपने वाले बदरंग हाथ....।[31] यह एक गरीब लड़की है। लेकिन अगर वह अमीर घर में पैदा होती तो क्या बदल जाता? कुछ विशेष नहीं उसके टूटे-फूटे घर की जगह

---

[29] जया जादवानी, वहाँ मैं हूँ, मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से), पृ.30
[30] वही, पृ.28
[31] जया जादवानी, लड़की आसमान में, मुझे ही होना है बार–बार (कहानी संग्रह से) पृ. 37

हवेली हो सकती थी, खुरदुरे, काले हाथों की जगह कोमल, सुन्दर हाथ हो सकते थे; लेकिन इससे उसका सच नहीं बदल जाता है। यह लड़की अभी ठिठकी खड़ी है कि सपनों को जी ले या यथार्थ को स्वीकार ले। 'कत्ल तो उसे दोनों ही जगह होना है।' या तो हिम्मत करके चुन ले सपने या माँ की तरफ फटकती रहे चावल और लीपती रहे गोबर....। ऐसी ही एक कहानी है 'तीसरा कक्ष'। हमारे घरों में जिस तरह लड़की को एक अच्छी लड़की बनाने की कवायद की जाती है पहले पिता के घर में फिर पति के घर में। और वह जो स्वयं है, वह कहाँ रहती है– वह रहती है –तीसरे कक्ष में। यह तीसरा कक्ष उसका मनो जगत है। जहाँ वह अपनी समस्त खूबियाँ खामियों के साथ अपने से मिलती है। हमारे समाज में तो वह इस तरह न सोच सकती है, न रह सकती है।

स्त्री के जीवन को जितना हम जानते हैं वह सिर्फ उसका बाहरी रूप है जिसे समाज अपने हिसाब से अनुकूलित करता है। यहाँ स्त्री चाहकर भी अपना सोचा हुआ कह नहीं सकती क्योंकि फिर वह अच्छी स्त्री नहीं रह जाएगी। यह है हमारे समाज का सच जहाँ अपनी इच्छा से जीना, अपने बारे में निर्णय लेना तो दूर एक स्त्री अपनी सोच तक नहीं बता सकती। पितृसत्तात्मक संस्कारों और मूल्यों का दबाव उसे सब कुछ बर्दाश्त करने को बाध्य करता है। इन संस्कारों में जकड़ी स्त्री किस तरह इन बंधनों और रूढ़ मानसिकता के कारण घुटन और ऊब महसूस करती है इस समस्या को चित्रित करती है कहानी 'जहाँ कोई नहीं जाता'।

पुरुष स्त्री को उतना ही समझना चाहता है जितने की उसे जरुरत है। जबकि स्त्री उसे अपने अन्तर्जगत से भी परिचित कराना चाहती है, जहाँ उसकी आशाएँ, आकांक्षाएँ, दुख-सुख और सपने रहते हैं। लेकिन पुरुष तो उसे जानना ही नहीं चाहता, और इस स्थिति से खिन्न स्त्री अब साहस करने लगी है उसे 'ना' कहने का! वह अपने स्तर के पुरुष के इंतजार में खड़ी है जिसके साथ वह अपने 'निस्सीम विस्तार में खो' सके। लेकिन पुरुष अपनी जगह से हिलना ही नहीं चाहता और स्त्री अब उससे 'बॉर्डर' पर मिलना नहीं चाहती है। स्त्री मन को खोलने के लिए लेखिका ने अपने गहन अनुभव और संवेदना के सहारे अत्यंत-सशक्त परिवेश रचा है, जो कहानी की संवेदना को और भी सघन बना देता है।

"आज वह फिर आया है। क्यूँ आया है? जब उसे डर लगता है। 'बार्डर' पर मिलने के लिए? उसने दरबाजा खोल दिया–

'क्या चाहिए?'

'तुम'

'मैं यहाँ रहती हो?'

'कहाँ रहती हो?'

'जहाँ कोई नहीं जाता'

वह लौट रहा है, नहीं वह लौट नहीं रहा, वहीं खड़ा है प्रतीक्षा में ..."[32] यह हमारे समाज की स्थिति है। पुरुष को अब भी लगता है कि स्त्री उसी के पास आएगी लौटकर और जाएगी कहाँ? लेकिन उसे यह जानना ही होगा कि जाने की बारी पुरुष की है या तो वह अपने जड़ संस्कार छोड़कर स्त्री की दुनिया में प्रवेश करे। नहीं तो प्रतीक्षा करता रहे, वह नहीं आने वाली उसके पास। "उसने दरवाजा बंद कर दिया, वह उतरी नहीं है अभी, उतरने की प्रक्रिया में अधूरी खड़ी है।"[33] उस सहचर पुरुष की तलाश में जो उसे देह ही न समझे, उसके मन की गहराइयों से भी वाकिफ होना चाहे।

इस रूप में 'मुझे ही होना है, बार-बार' संग्रह की कहानियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं। स्त्री मन के साथ-साथ इनमें स्त्री दृष्टि से समय, समाज, व्यवस्था और संस्कृति की पड़ताल भी की गई है, जिनके मध्य आज की स्त्री रहती है, जीती है और अपनी इयत्ता तलाशती है।

'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है' संग्रह की कहानियों में स्त्री की एक नई छवि उभरती है। अपने अस्तित्व और अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक आज की स्त्री अपनी बाधाओं के समक्ष रोती-झींकती नहीं, वह दया दृष्टि पाने और आत्मदया की स्थिति से बाहर आ चुकी है। उसका दायरा अब बड़ा हो गया है हालाँकि अपने संस्कारों से वह अब भी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है। इसलिए इन संस्कारों से टक्कर लेने में कभी वह खुद टूटती है तो कभी इन संस्कारों को तोड़ने में सफल होती है। इन कहानियों में उथल-पुथल के बाद का स्थिर, दृढ़ चिन्तन

---

[32] जया जादवानी, जहाँ कोई नहीं जाता, मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से) पृ.49
[33] वही, पृ.49

और पारदर्शी दृष्टि स्पष्ट है। स्त्री केवल देह या पुरुष से उसके संबंध के स्तर पर ही नहीं धर्म, अर्थ, राजनीति, संस्कृति, समाज और सामाजिक संस्थाओं, परम्पराओं, रीतियों – जहाँ-जहाँ स्त्री होने के नाते उसे दोयम दर्जे पर रखा गया, सब से टक्कर ले रही है। लेखिका किसी भी समस्या का त्वरित या काल्पनिक समाधान प्रस्तुत नहीं करती बल्कि वह यथार्थ को ज्यों का त्यों प्रस्तुत भर कर देती है। ताकि उस यथार्थ को पढ़ने-जानने के बाद लोगों को लगे कि यह गलत हो रहा है, और उस स्थिति को बदलने के लिए वृहद् स्तर पर चेतना का निर्माण हो सके। बदलाव के लिए सामाजिक संरचना को बदलना जरूरी है। इसके बिना न तो स्त्री की मुक्ति सम्भव है न ही एक स्वस्थ्य संतुलित समाज की स्थापना। जब तक स्त्री-पुरुष के संबंध सहज, सरस नहीं होते, किसी भी सकारात्मक बदलाव की कल्पना बेमानी है।

'कयामत का दिन उर्फ कब्र से बाहर' कहानी की पढ़ी-लिखी नायिका सब-कुछ जान-समझकर भी पुनः खुद को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुपुर्द कर देती है, तो यह भी हमारे समाज की एक वास्तविक स्त्री ही है। विद्रोह करने का जज्बा, वह भी टूटने की हद तक हर किसी में नहीं होता। जबकि 'पलाश का फूल', 'परिदृश्य', 'मुक्ति', 'फिर फिर लौटेगा, आदि कहानियाँ स्त्री की सशक्त छवि प्रस्तुत करती हैं।

हमारे समाज में स्त्री को शिकायत पुरूष से नहीं बल्कि उसकी बनाई हुई पितृसत्तात्मक व्यवस्था से है। वह पुरुष विरोधी, परिवार विरोधी या मातृत्व विरोधी नहीं है। वह विरोधी है इन सबके उस रूप की जहाँ उसका शोषण होता है। इस शोषण को वह सहने को तैयार नहीं है। इस क्रम में अगर परिवार बिखरता है तो बिखरे, वह अकेले कितना सह सकती है। इस स्थिति के लिए पुरुष स्वयं जिम्मेदार है। जहाँ-जहाँ पुरुष की मानसिकता में बदलाव आया है वहाँ स्त्री और पुरुष दोनों ज्यादा सुखी, संतुष्ट और पूर्ण हैं।

आज भी यह हमारे समाज का बहुत बड़ा सच है कि स्त्री बाहर भी सँम्भालती है और घर भी और इस प्रक्रिया में वह हजारों बार टूटती है। यह मध्यमवर्गीय दोहरी मानसिकता ही है जो एक तरफ अपने घर की स्त्रियों को पढ़ा-लिखाकर आधुनिक बनाने का प्रयास करता है और दूसरी ओर घर के भीतर आदर्श पत्नी, बहू, भाभी, माँ आदि बने रहने की उम्मीद रखता है। औरत कितना भी पढ़ी-

लिखी हो अगर वह नौकरी नहीं करती है तो घरेलू काम की कोई कीमत नहीं है। हमारे घरों में दिन भर खटने के बाद उसे जब-तब 'तुम करती क्या रहती हो दिन-भर', 'तुम्हारे पास कोई काम-धाम तो है नहीं' जैसे जुमले सुनने को मिलते रहते हैं। वह न तो उच्चवर्ग की भाँति दिन भर खटने से मुक्ति पा सकती है न ही निम्नवर्ग की भाँति संस्कारों, परम्पराओं की अनदेखी कर सकती है।

वैज्ञानिक उपकरणों ने उसे थोड़े समय के लिए खुश जरूर किया लेकिन यहाँ भी उसकी परम्परागत भूमिका नहीं बदली। मल्लिका सेन गुप्त अपनी पुस्तक 'स्त्री लिंग निर्माण' में इस सच को बहुत सटीक ढंग से सामने रखती हैं कि पुरुष और स्त्री दोनों कामकाजी हैं तो भी घर सँम्भालने, कामवाली के न आने पर रसोई सँम्भालने का काम वही करेगी, बच्चे वही सँम्भालेगी, और इस तरह इन कामों में वह अपना जितना समय गुजारेगी, उतने में पति या तो गप्प लगाएंगे या अपना पढ़ने-लिखने का काम करेंगे। इसके पीछे निहित कारणों के बारे में वे कहती हैं कि संस्कार और परम्पराएँ इस हद तक पुरुष की मानसिकता को जकड़े हुए हैं कि उसे स्त्री की स्थिति और अपनी स्थिति के बीच कहीं कुछ गलत नहीं महसूस होता। एक सकारात्मक बात यह है कि उनके लेखों को पढ़ने के बाद स्वयं उनके पति और कई अन्य पुरुषों को महसूस हुआ कि जो कुछ स्त्रियों के साथ सदियों से होता चला आ रहा है, वह गलत है। इस स्थिति को बदलने के लिए सामाजिक, पारिवारिक संरचना और मानसिकता में बदलाव जरूरी है।

जया जादवानी की कहानियाँ इसी सामाजिक परिवेश और उसमें स्त्रियों की स्थिति तथा उनके प्रश्नों को सामने लाती हैं। उनकी कहानियों में भिन्न-भिन्न स्थितियों में स्त्री के प्रश्नों को उठाया गया है। साथ ही, उसमें आने वाले बदलावों को भी उजागर किया गया है। कहानियों में स्त्री के प्रश्न अलग-अलग हैं, स्थितियाँ अलग-अलग हैं लेकिन इन सबके पीछे कारण एक ही है—स्त्री की अधीनस्थ भूमिका। कहानी 'अपनी जगह' और 'वहाँ मैं हूँ' 'मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह से) कमोवेश एक ही परिवेश में स्त्री प्रश्नों को भिन्न-भिन्न स्तरों पर खोलती हैं।

'अपनी जगह' कहानी अत्यंत नाटकीय ढंग से ऐसी स्त्री की मानसिक ऊब और बेचैनी को दर्शाती है, जिसके पास भौतिक रूप से वे सारी सुख-सुविधाएँ हैं जो एक परिवार को सामाजिक रूप से सम्पन्न कहलाने के लिए जरूरी होते हैं— फ्रिज,

टी.वी., वाशिंग मशीन, सुसज्जित, व्यवस्थित घर। लेकिन, इस व्यवस्था में कहीं कुछ है जो स्त्री को बेचैन करता है। यह ऊब उसी तरह की है जो 1970 के दशक में सुविधा सम्पन्न मध्यमवर्गीय स्त्रियों में स्वयं की कोई स्वतंत्र पहचान न होने के कारण अमेरिका में उभरी थी और जिसे बेट्टी फ्रीडन ने अपनी पुस्तक 'द फेमिनिन मिस्टीक में अत्यंत सटीक ढंग से परत-दर-परत उधेड़ा है। उसके भीतर 'गहरी धुंध' बढ़ती जा रही। और एक अनसमझी ऊब। धीरे-धीरे लोगों की जगह उसे परछाइयाँ दिखने लगती हैं। वह अपनी परेशानी किसी से 'शेयर' करना चाहती है, लेकिन किससे कहे। इसी तरह 'वहाँ मैं हूँ' कहानी में स्त्री ऊब की शिकार है। भीतर सब कुछ सड़ रहा है लेकिन बाहर की दिखावटी सज-धज में भीतर की वास्तविकता वह सबसे छिपा लेती है। मन कहीं, देह कहीं। दरअसल, इन सारी स्थितियों के पीछे निहित कारणों को अत्यंत दिलचस्प ढंग से सामने रखती कहानी 'तीसरा कक्ष', जहाँ स्त्री को शुरू से पितृसत्ता के आदर्श साँचों में ढलना सिखाया जाता है। उसे सिखाया जाता है कि यह मत करो, वह मत करो। इस तरह उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व, और सोच विकसित ही नहीं होने दी जाती। वह बचपन से अपने लिए कुछ चुनती ही नहीं, दूसरों ने चुन दिया उसके लिए और उसने स्वीकार कर लिया।

"लड़कियाँ और करती क्या हैं, सारी उमर अपने को छिपाने के सिवा? मुझे देखो क्या कोई समझ पाया आजतक? ये जो किताबों में लिखा होता है इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं होता। ये जिस जीवन की ओर इशारा करते हैं, क्या कोई भी उसे छू सकता है? ये एक सपनीला झूठ है, जिसे औरतें अपने चारों ओर बुनती हैं। सच तो यह है कि तुम जो हो तुम्हें वही बन के रहना है।"[34] लेकिन आजकल लड़कियाँ उन सपनों को सच कर रही है जो उनकी माँओं को सपनीला झूठ लगता था और सपनों को साकार करने का साहस उन्हें किताबों ने ही दिया है। वह अब अपनी स्थिति के प्रति सजग है, अब और 'नासमझियाँ नहीं करना चाहती क्योंकि अब वह अपने को मारकर 'अच्छी लड़की' नहीं बनी रहना चाहती, वह बंधनों को तोड़कर जीना चाहती है, भले ही वह 'बुरी' बन जाए।

---

[34] जया जादवानी, 'तीसरा कक्ष' मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से) पृ.67

कहानी 'परिदृश्य' में स्त्री का यही रूप साकार होता है, जब माधवी परिवार रूपी पिजड़े से खुद को मुक्त कर अपने लिए जीवन चुनती है। यहाँ 'परिवार' और 'विवाह संस्था' का सच भी नग्न रूप में सामने आ जाता है। दिन भर पति, बच्चे और घर के लिए खटने वाली स्त्री का वास्तव में अपना कोई घर नहीं होता न पिता के यहाँ न पति के यहाँ। फिर भी वह इसी के लिए मरती रहती है। अपनी अस्मिता के प्रति सजग स्त्री को संस्कारों के धागे ज्यादा समय तक बाँधे नहीं रख सकते। बस स्त्री के चाहने भर की देर है, इन्हें टूटते वक्त नहीं लगता। और माधवी जब चाह लेती है अपने लिए जीना तो फिर अपनी राह की बाधाएँ भी वह खुद दूर कर लेती है। महादेवी वर्मा कहती हैं, समस्या का समाधान समस्या के ज्ञान पर निर्भर है। अब वह मानसिक और आर्थिक दोनों रूपों में स्वनिर्भर है।

माधवी का ही एक नया संस्करण है 'पलाश का फूल' की अपूर्वा। लेकिन यहाँ स्थिति अधिक जटिल है, वह रोहित से प्यार करती है, और रोहित उसे। लेकिन अपने अस्तित्व को वह निरर्थक नहीं करना चाहती। रोहित उसकी महत्त्वाकांक्षों को समझ नहीं पाता या शायद समझना नहीं चाहता। तभी तो जब अपूर्वा ने अपना स्कूल खोलने की 'प्लानिंग' बनाई तो उसके भीतर का परम्परागत पौरुषीय दंभ चिंघाड़ उठा "'सॉरी' मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता, वैसे भी 'वूमन लिब' के नारे लगा लेना जितना आसान है, उस पर अमल करना उतना ही मुश्किल। तुम दिखा दो न दुनिया को, औरत किस तरह जीती है अकेले... वगैर पुरुष की मदद के और यही तो तुम दिखाना भी चाहती हो....।' उसके स्वर में गुस्सा नहीं था, व्यंग्य भी नहीं था, ललकार थी। चुनौती... जो अपूर्वा ने स्वीकार कर ली।"[35]

अपूर्वा अपने बलबूते पर स्कूल चला रही है। रोहित कभी-कभी आता है उसके पास चार-पाँच दिन के लिए। लेकिन उनके बीच कुछ असहज हो गया है, उसे अपूर्वा का घर अपना घर नहीं लगता लेकिन क्यों? स्त्री तो सदियों से पुरुष के घर को अपना घर मानती आई है तो वह क्यों नहीं मान पा रहा? दरअसल, रोहित कभी-कभी अपूर्वा के विशाल व्यक्तित्व के आगे झुकना चाहता है लेकिन उसका

---

[35] जया जादवानी, 'पलाश का फूल', अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से) पृ.14

पौरुषीय अहं, उसके संस्कार उसे रोक लेते हैं। यही वजह है कि कामका स्त्री आज परिवार में अकेली होती जा रही है। बाहर वह नेतृत्व की स्थिति में भले पहुँच रही हो– डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, इवेण्ट मैनेजर या प्रशासनिक पदों पर लेकिन घर में उसकी भूमिका परम्परागत ही है। इस स्थिति में बदलाव के लिए सामाजिक संरचना में बदलाव जरूरी है जो पुरुष की मानसिकता में बदलाव के बिना दूर की कौड़ी है। सम्भावनाओं, सपनों और साहस से भरी अपूर्वा अपने बलबूते पर सपनों को साकार तो करती है, लेकिन अगर इसमें रोहित उसके साथ होता तो उसके भीतर की जो इच्छाएँ, सहजता, कोमलता परिस्थितियों के दबाव में मर गईं, वह न मरतीं, शायद सोने के लिए उसे नींद की गोलियाँ न खानी पड़ती। फिर भी, "उसने तो बस जीना चाहा, हारना नहीं.... कैसे भी इस संघर्ष में चाहे उसका वजूद ही मिट जाए।"[36]

शिक्षित और कामकाजी स्त्री ने प्रतिरोध करती स्त्री को सम्भव बनाया है। जिससे आत्मनिर्भर, अकेली, पितृसत्ता से बाहर जाती स्त्री की सम्भावना बढ़ी है। ('परिदृश्य', 'पलाश का फूल' कहानियाँ– 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' संग्रह)

बदले हुए समय एवं समाज की समस्याओं को जया ने बखूबी पकड़ा है, जिनके केन्द्र में स्त्री है। धर्म के नाम पर पाखण्ड को दिखाती है कहानी 'मुक्ति'। हमारे समाज में न जाने कितने लोग अपने कर्त्तव्यों और जीवन संघर्षों से विमुख होकर न जाने किस अनजानी, अदृश्य मुक्ति की तलाश में मंदिरों में और आश्रमों की शरण में पड़े रहते हैं। कहानी में पूरी व्यवस्था को एक पढ़ी-लिखी संवेदनशील लड़की के नजरिये से देखा गया है, जो खुद परिस्थितियों से विवश होकर यहाँ आ गई है। लेकिन अन्य लोगों की भाँति उसे यहाँ किसी भी तरह की शांति नहीं मिलती। वह एक गरीब घर की लड़की है, तीन बहनें और हैं और एक बूढ़ी माँ। पिता रहे नहीं। जब थे तब भी उन्होंने अपने दंभ के आगे माँ को कुछ समझा ही नहीं। भाई-भाभी अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। माँ अपने संस्कारों की जकड़न में कैद-बेबस, लाचार औरत जो सब कुछ भगवान भरोसे मानकर चलती हैं। "माँ मुझे हमेशा

---

[36] वही, पृ.19

भोली और निर्दोष लग कि उन्हें बहकाया जाता रहा है कि उन्हें मानसिक संरक्षण चाहिए और वह कोई भी नहीं दे पाता– पिता भी नहीं।"[37] और पिता के न रहने के बाद हारी, टूटी, हताश माँ ने धर्म के आश्रय में जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। तीनों छोटी बहनें तो नासमझ थीं, तुरंत तैयार हो गईं साथ जाने को। और सबसे बड़ी मनु जो जाना तो नहीं चाहती, लेकिन एक तरफ अकेली माँ और बहनों की चिन्ता है तो दूसरी ओर उसे माँ के चले जाने के बाद अपने परिणाम का भी पता है। भाई-भाभी की झिड़कियाँ, सारा दिन काम और अकेलापन। अन्ततः वह भी माँ के साथ हो लेती है।

इस सब के पीछे जिम्मेदार समाज, व्यवस्था और परिवार कुछ नहीं करते। भाई-भाभी के अपने स्वार्थ हैं–कौन चार-चार बिन ब्याही लड़कियों और बूढ़ी माँ का ठेका ले। आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और परिस्थितियों से निपटने का साहस हमारे समाज और परिवार में लड़कियों को सिखाया नहीं जाता। ऐसे में उनके पास रास्ता नहीं बचता सब कुछ भाग्य भरोसे छोड़ने के अलावा "हमने घर छोड़ा, रिश्ते छोड़े और इस सब कुछ को छोड़ने के बीच हम बहुत रोए और मैं सोचती रही थी– 'यूँ ही किसी के छुड़ाने से संसार छूट जाता है क्या? बल्कि वह हमारे अंदर और भी गहरा उतरता जाता है। न हासिल कर पाने का क्षोभ और पश्चाताप हमें कभी उससे मुक्त नहीं होने देता। जब मुक्ति कहीं है ही नहीं तो यह सब... इतना सब.. .?"[38] इस पूरे घटनाक्रम में मनु अपने को बेहद हारी हुई और अपमानित महसूस कर रही है। उसे लगता है कि यह उसकी 'समझ' और 'शिक्षा' का 'अपमान' है। उसने 'गुरु महाराज' की आँखों में आँखें डालकर देखा और उसकी आँखों में उमड़े प्रश्नों को देख 'गुरु महराज' ने सकपका कर आँखें फेर लीं। रात को एकांत में जब मनु ने चोरी से अपने साथ लाए हुए छोटे से शीशे में अपना चेहरा और घुटा हुआ सिर देखा तो न जाने कितना गुस्सा, कितनी नफरत उसके मन में भर गई इस अन्यायपूर्ण के प्रति, धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्ड के प्रति और अपनी विवशता के प्रति। वह जोर-जोर से चीखना चाहती है – "देखो.... देखो मेरे साथ क्या हो गया? और तुम सब खामोश हो... मेरा क्या कसूर है? मुझसे जीने से पहले क्यूँ छीन

---

[37] जया जादवानी, मुक्ति, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है (कहानी संग्रह से), पृ.33
[38] वही, पृ.34

ली जिन्दगी? मुझे इस कैद से आज़ाद कर दो... मैं तुम्हें कभी माफ नहीं करुँगी। ओ भगवान अगर इसी का नाम मुक्ति है तो मुझे नहीं चाहिए...नहीं चाहिए...।"[39]

उसके मन में इस ट्रस्ट और 'गुरु महराज' के बारे में ढेरों प्रश्न हैं। उसे अजीब लगता कि बाहरी दुनिया से 'इस दुनिया' का कोई सम्पर्क नहीं था – न टी. वी. न रेडियो, न समाचारपत्र'। जीवन की समस्त नैसर्गिक गतिविधियों से, उसके संघर्षों से दूर यहाँ के लोग किस मोक्ष की तलाश में पड़े हैं, 'अपने प्रति, परिवार समाज देश के प्रति' और मानवता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़कर। और 'गुरु महाराज' – सबको माया-मोह त्यागने की सीख, खुद महँगी गाड़ियों में चलते हैं, लोग उन्हें भगवान समझते हैं। लेकिन 'मनु' कभी नहीं समझ पाई यह सब।

एक बार दीवाली के 'अवसर' पर ट्रस्ट में दर्शन हेतु आने वाले लोगों में मनु जैसी ही एक लड़की आती है। वह यहाँ की व्यवस्था के प्रति गुस्से से भरी है। 'गुरु महाराज' से सवाल-जवाब करने के बाद वह रास्ते में मनु से इस तरह यहाँ खुद को मारकर जीने का कारण पूछती है। लेकिन विवश मनु भीतर-भीतर घुटकर रह जाती है–क्या होगा कुछ भी बताकर। जाते वक्त वह किसी से मिलकर नहीं गई, 'मनु' से भी नहीं। लेकिन, पता चला, उसने मनु की माँ से कुछ सख्त लफ़्ज कहे थे, उसके बाद एक दिन अचानक माँ उसे 'आधी रात' को झिझोंड़कर उठाती है, "तू भाग जा मनु, यहाँ कुछ नहीं है। कहीं कुछ नहीं है अगर मन में भटकाव हो। सारी जिन्दगी दूसरों के फैसले मानने व अपने किए गए पर पश्चात्ताप के सिवा और क्या किया है मैंने? फिर भी मरते दम तक यह सन्ताप कि मैं एक घड़ी अपनी न हुई।"[40]

यह चिन्तन अचानक ही नहीं उपजा बल्कि उस दिन वह लड़की जो कुछ सुनाकर गई थी, उसने परम्परा और संस्कारों में जकड़ी 'मनु' की माँ को भीतर तक मथ डाला था। इसी आत्ममंथन का परिणाम है कि वह अपने समग्र जीवन पर विचार कर सकी। अब वह अपने निर्णय पर अडिग है, वह अपनी तरह अपनी बेटी को घुट-घुटकर जीने के लिए बाध्य नहीं करेगी। क्योंकि अपने जीवन के विषय में किसी की आज्ञा पालन नहीं बल्कि स्वयं निर्णय लेना होता है। और माँ मनु को अपनी इच्छा से जीने के लिए आश्रम से मुम्बई ब्रांच जाने के बहाने भगा देती है।

---

[39] वही, पृ.36
[40] वही, पृ.42

मनु ट्रेन में खिड़की से सिर टिका कर सोच रही है, "... एक यात्रा ही तो है जीवन- हाँ मुक्ति की तलाश की यात्रा.... एक छूटी... दूसरी जुड़ गई... क्या करूँगी मैं ...? कहाँ जाऊँगी...? वापस अपने घर? नहीं, नहीं, वह तो छूट चुका। क्या सचमुच कुछ छोड़ने से छूट जाता है? नहीं न ... अगर छूट सकता? तो? चलूँ वापस? एक अगली यात्रा और किसी अगली मुक्ति ाकी तलाश में...? क्या सचमुच कहीं मुक्ति है. .. या .....?"[41] सदियों पुराने संस्कारों, परम्पराओं की जकड़न से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्रता से जीने की यात्रा पर निकली स्त्री के मन की बेचैनी और अनिश्चितता को लेखिका ने एकदम सटीक शब्दों में उजागर किया है। अनगिनत बंधनों, दबावों और समस्याओं के बीच अपनी सार्थकता की तलाश में निकली स्त्री की मुक्ति–यात्रा का यह महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

कहानी 'फिर-फिर लौटेगा' युगों-युगों से चली आ रही धर्म की स्त्री विरोधी छवि को उजागर करती है। हालाँकि हर युग में स्त्री ने इस स्थिति पर सवाल खड़े किए हैं, कि यदि धर्म मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए है, तो स्त्री को पुरुष के बराबर स्थान क्यों नहीं दिया जाता है। वही स्त्री जिससे दुनिया का सारा कार्य-व्यापार चलता है, जिसकी कोख से ये बड़े-बड़े सन्त-महात्मा, सुधारक जन्म लेते हैं, वह भला उनकी साधना और मुक्ति में बाधक कैसे बन सकती है। वह कैसा धर्म है जो सबसे पहले स्त्री-त्याग और अपनी नैसर्गिक और नैतिक जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ने की शर्त रखता है। मानव कल्याण की बात करने वाले धर्म और उसके ध्वजाधारियों को क्या कभी महसूस होता है कि घर, परिवार छोड़कर उनकी शरण में आने वाले लोग कितने लोगों के गुनाहगार होते हैं। पुरुष अकेले सिर्फ अधूरी मुक्ति ही प्राप्त कर सकता है, और इस तरह वह पूर्ण की तलाश में अभिशप्त भटकता रहता है।

कहानी की नायिका तनु, जिसका पति तरुण अपने पीछे उसे और अपने बूढ़े माँ-बाप को छोड़कर न जाने किस अदृश्य और अमूर्त मोक्ष की तलाश में भटकने निकला है, उससे सवाल करती है, "तू बहुत बड़ा स्वामी हो गया है न। जिन प्रश्नों के उत्तर के लिए तू भटका करता था, उनके उत्तर मिल गए होंगे। आज मेरे एक

---

[41] वही, पृ.42

सवाल का जवाब भी देता जा – तुम लोग औरत को हमेशा रोड़ा क्यों समझते हो? संसार में उसे साथ लेकर चलने में सार्थकता पाते हो। जब संसार से विचलित हुए तो सबसे पहले उसे छोड़ा। पूछ सकती हूँ क्यूँ? औरत क्या सिर्फ सोने के काम आती है? तुम्हारे देव पुरुषों ने औरत जब तक चाही, साथ रखी, फिर अनचाही समझ किनारा कर लिया। हम नींव के पत्थर हैं तरुण, जिन पर तुम्हारे भवन खड़े हैं। जिस कोख पर पैर रखकर खड़े होते हो तुम उसी को उजाड़ते हो– यही कहता है तुम्हारा धर्म?"[42] तनु से नजरें मिलाने का साहस नहीं है तरुण के पास, वह नजरें झुकाए अपराधी-सा खड़ा है उसके सामने। तनु उसकी छोड़ी हुई जिम्मेदारियों को निभा रही है, क्योंकि उसके लिए बूढ़े-असहाय माँ-बाप की देखभाल करना ही उसका धर्म है। उसकी दृष्टि और लक्ष्य सबकुछ स्पष्ट है। वह जानती है कि दुनिया उसके बिना नहीं चल सकती। और पुरुष जब तक इस सत्य को नहीं समझ लेता वह भटकता रहेगा। इसीलिए जब पिता के क्रिया-कर्म के बाद तरुण फिर जाने लगता है तो तनु दृढ़ता से माँ को उसे रोकने से मना कर देती है– "जाने दे माँ। यह फिर-फिर लौटेगा, फिर -फिर जाने के लिए...।"[43]

जड़ संस्कारों और सड़ी-गली मान्यताओं से चिपका समाज पुरुष को तो सारी ऐय्याशियाँ करने की छूट देता है और एक स्त्री को उसका बचपन भी ढंग से नहीं जीने देता है। लड़की के प्रति एक विशेष नजरिया रखने वाला पुरुष समाज बचपन में ही लड़की के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार कर उसके व्यक्तित्व और उसकी सोच को कुण्ठित कर देता है। कहानी 'कॉकरोच' ऐसी ही पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों की शिकार लड़की की दशा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। बिना माँ की बच्ची वर्षा अपने पापा के अथाह प्यार में सराबोर है। उसे कभी माँ की कमी महसूस नहीं होती। पापा रोज़ सुबह नौकरी करने शहर जाते और शाम को उसके लिए ढेर सारी चीजें लाते। उसे गोद में लिए रहते, उसके साथ खेलते, हँसते। एक दिन पापा घर में दादी-बाबा से कहते हैं कि वे रोज-रोज नहीं आ जा सकते अतः सिर्फ शनिवार को आया करेंगे। बाकी दिन वहीं शहर में

---

[42] जया जादवानी, फिर फिर लौटेगा', अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है (कहानी संग्रह से), पृ. 103

[43] वही, पृ.104

रहेंगे। वर्षा के बहुत रोने-चिल्लाने के बाद भी पापा का फैसला नहीं बदला। धीरे-धीरे उसे भी आदत पड़ गई लेकिन अभी-भी उसकी दुनिया पापा से शुरु और पापा पर ही खत्म होती थी। और एक दिन पापा दादी-बाबा समेत उसे भी अपने साथ शहर ले आये। वर्षा की खुशी का तो ठिकाना ही नहीं, अब वह हमेशा पापा के पास रहेगी। तब वह छठी कक्षा में पढ़ रही थी। लेकिन यहाँ तो पापा और भी व्यस्त हो गए। छुट्टी के दिन भी उनके पास वर्षा के लिए वक्त नहीं रहता, उनके कई सारे दोस्त उनसे मिलने आते और वे ड्राइंगरुम में बैठकर उनसे बातें करते रहते। वर्षा को इस समय ड्राइंगरुम में न आने की सख्त हिदायत दी जाती। लेकिन वह पापा के पास बैठने की, उनके साथ रहने की ज़िद करती, इसी ज़िद के कारण एक दिन पापा उसे झिड़क देते हैं और वह गुस्से में आकर लैम्प उठाकर पटक देती है। पापा इस हरकत पर उसे झन्नाटेदार थप्पड़ मारते हैं। वह रोई नहीं लेकिन उसके भीतर न जाने कितना क्रोध भर गया। और एक दिन जब वह आठवीं में पढ़ती थी, उसका 'टूर' अमरकंटक जाने वाला था, वह खुशी-खुशी घर आई। बरामदे में पापा का 'हैट' टँगा देख वह पापा को 'टूर' वाली बात बताने के लिए आतुर, उनके कमरे की तरफ गई और 'पापा'-'पापा' कहते हुए दरवाजे को जोर का धक्का देकर खोल दिया। लेकिन जो दृश्य उसने देखा उससे वह भौंचक रह गई, "वह पापा नहीं थे--- एक नग्न पुरुष---एक नग्न महिला के ऊपर था, जो हड़बड़ा कर सीधा हुआ और अचानक वह पलटी और दौड़ती हुई मुंडेर पर आ बैठी। चेहरे पर हाथ फेरा। पसीने से तर-बतर था। साँस फूल रही थी। सकते की स्थिति में वह जाने कितनी देर वही बैठी रही कि पापा की गरजती हुई आवाज सुनाई दी– 'वर्षा'---"[44] और यह क्या पापा ने उसे जोरदार थप्पड़ रसीद कर दिया, "बेवकूफ लड़की इतनी बड़ी हो गई, इतनी तमीज़ नहीं कि खटखटा कर अंदर जाओ।"[45] और उसी क्षण जो पापा उसके लिए देवता थे, उनमें उसे 'किसी के जिस्म पर अपने भद्दे हाथ-पैरों से रेंगते हुए कॉकरोच' की छवि नजर आने लगी। इस घटना ने उसे जीते मार डाला और वह जिन्दा लाश बन गई। फिर एक दिन उसने पापा की अलमारी में ढेर सारे गहने, साड़ियाँ और सामान देखा, वह समझ गई कि यह उसी "दोपहर वाली औरत" के

---

[44] जया जादवानी 'कॉकरोच', अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से), पृ.25
[45] वही, पृ.25

हैं। तेज़ गुस्सा उसकी नसों में फैल गया। वह सारी रात सो न सकी। "उस रात उसके बचपन की अन्तिम मौत हो चुकी थी।"[46] जब वह नवीं कक्षा में पढ़ती थी तो एक और घटना घटी। वह दादी के साथ अपनी सहेली के घर 'अष्टमी पूजा' में शामिल होने गई थी। 'सफेद नायलोन का झिलमिलाता नया फ्राक पहनकर'। वहाँ कुछ लड़कों ने उसके "उभारों की तरफ संकेत कर" निहायत भद्दी टिप्पणी की, "आ तेरी चढ़ती जवानी को परवान चढ़ा दूँ।" इस घटना के बाद उसे सारे पुरुष गंदे कीड़े– कॉकरोच नजर आने लगे। अचानक उसने सोचा, "अच्छा, कोई अगर उसी के जिस्म पर कॉकरोच छोड़ दे... नहीं–नहीं... उसका समूचा बदन सिहर उठा। वह अपने जिस्म पर किसी कॉकरोच को नहीं रेंगने देगी। कभी नहीं। किसी को पता तक नहीं चला और किसी का पूरा संसार बदल गया। कोई विस्फोट नहीं, भूकम्प नहीं, तरेड़ नहीं, उफ तक नहीं।"[47] यह है लड़कियों को (स्त्री को) देवी के रूप में पूजने वाले हमारे समाज की मानसिकता, जहाँ घर में वह वक्त से पहले ही बड़ी हो जाती है और समाज में हर कोई उस 'कच्ची कली' को मसलने के लिए आतुर है। कोई नहीं समझता कि इस तरह का व्यवहार एक झरने-जैसे बहते जीवन को कब और कैसे खत्म कर देता है।

एक दिन दादी पापा की कारगुजारियों से तंग आकर पापा की दूसरी शादी करवा देती हैं। सौतेली माँ की नफरत वर्षा के बचे-खुचे जीवन को भी निगल लेती है। इन सारी परिस्थितियों के बीच जो वर्षा बचती है वह दरअसल 'वर्षा' रह ही नहीं जाती। बचपन से लेकर उसके बी.एस.सी. में आने तक की घटनाएँ उसके भीतर गहरी हताशा और अंधकार भर देती हैं। उसका पति शादी के बाद जब उसे छूता है, चूमता है, उसका नाम अपने होंठों से पुकारता है तो वर्षा में जीवन की एक सम्भावना नज़र आती है। वह इन प्यार के क्षणों को घूँट-घूँट पीना चाहती है। वह प्रभाकर (पति) से कुछ कहना चाहती है, "देखो प्रभाकर जल्दी न करो। जिन्दगी सिर्फ आज की रात नहीं। देखो, मुझे समझने की कोशिश करो। मैं जिन राहों पर इतनी दूर आ गई हूँ, उन पर से लौटने को मुझे वक्त चाहिए। मुझे जानने दो कि नफरत कभी भी मोहब्बत से बड़ी नहीं हो सकती। मुझे इसे एक हक़ की तरह पाने

---

[46] वही, पृ.26
[47] वही, पृ.27

दो। कर्ज़ की तरह नहीं। उसे लगा, कुछ भी कह नहीं पा रही।"[48] और जब चौंक कर उसने आँखें खोली तो खुद को बिल्कुल निर्वस्त्र पाया। उसके चेहरे पर गहरी पीड़ा और छटपटाहट का भाव उभर आया। वह प्रभाकर की पकड़ से छूटना चाहती है लेकिन पकड़ और सख्त हो जाती है। और फिर? पुरुष की 'गंदे-घिनौने कॉकरोच' वाली छवि अचानक उसके ज़ेहन में कौंध जाती है, "उसे लगा एक गंदा घिनौना कॉकरोच उसके बदन पर रेंग रहा है। वह काटता नहीं, अपनी लम्बी-लम्बी टाँगे फैलाए रेंग रहा है। उसके होठों पर गर्दन पर, उरोजों पर और उसने उसके उरोजों पर अपनी टाँगे रख दीं। हाँ, अब उसके पेट पर अब...अब.. उसकी टाँगों के बीच.. नहीं एक भयानक चीख के साथ उठी और प्रभाकर को पूरी ताकत के साथ परे फेंक दिया।"[49] प्रभाकर उसके इस व्यवहार से अवाक् रह गया। वह उसे पकड़कर पूछ रहा है –'वर्षा क्या हुआ?' वर्षा उसकी सख्त पकड़ से छूटने की कोशिश में अपने नाखूनों से उसकी 'नंगी छाती खरोंच देती है'। प्रभाकर छटपटा कर उसे ढकेल देता है। और अब वह 'बेसुध' हो एक ओर लुढ़की पड़ी है। यह कहानी 'वर्षा' के माध्यम से ऐसी स्थितियों से गुजरती और फिर असहज वैवाहिक जीवन गुजारती लड़कियों की दारुण व्यथा को एकदम ज्यों का त्यों प्रस्तुत करती है। बचपन पिता की नासमझी और लापरवाही की भेंट चढ़ गया तो वैवाहिक जीवन पति की जल्दबाजी की भेंट। दरअसल, हमारे समाज में 'पहली रात' को ही पत्नी से शारीरिक संबंध बनाने की मान्यता पुरुष के दिमाग में इस कदर बैठी है कि वह इसे अपनी विजय के रूप में देखता है। पढ़ा-लिखा प्रभाकर भी इसी मानसिकता का शिकार है। काश, कि वह वर्षा को 'पाने' में इतनी हड़बड़ी न दिखाता, उसे समझने की कोशिश करता तो शायद 'वर्षा फिर से जीवंत हो उठती। लेकिन सदियों से पुरुष को यही संस्कार मिलता आया है, वह देह पर अधिकार को ही स्त्री को पा लेना समझता है।

दरअसल पुरुष से अपने रिश्ते में स्त्री अंदर से बाहर की ओर मुड़ती है और पुरुष बाहर से अंदर की ओर। और यहीं सब कुछ गड़बड़ा जाता है। स्त्री-पुरुष वस्तुतः एक गाड़ी के दो पहिए हैं और दोनों के समान सहयोग से ही जीवन की

---

[48] वही, पृ.30
[49] वही, पृ.31

गाड़ी सही दिशा में आगे बढ़ सकती है। इस कहानी को 'लड़की आसमान में' 'जहाँ कोई नहीं जाता' 'वहाँ मैं हूँ' 'तीसरा कक्ष' (मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह से) जैसी कहानियों के साथ रखकर पढ़ने से सड़ी-गली सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं और वर्जनाओं के बीच तिल-तिल घुटती स्त्री की स्थिति को अधिक विस्तृत ढंग से समझा जा सकता है। कहानी का दूसरा पहलू यह है कि 'झर चुकने के बाद' की स्त्री की तरह वर्षा लाश की तरह पुरुष के नीचे बिछी नहीं रहती, वरन् उसे परे ढकेल देती है। यह स्थिति स्त्री की मानसिकता में बदलाव और उसके प्रतिरोध की सूचक है। वर्षा के भीतर अपने 'होने' के प्रति एक गहन चेतना है।

पुरुष स्त्री को एक वस्तु मात्र समझता है, जिस पर अगर उसका दिल आ जाए तो वह उसे किसी भी कीमत पर चाहिए। अगर वह उसे चाहता है तो वह किसी और को कैसे चाह सकती, किसी और की कैसे हो सकती है। इस मानसिकता का शिकार पुरुष उस पर अपना अधिकार जमाने के लिए किस हद तक गिर जाता है, और उसके इस व्यवहार के कारण कितने जीवन, कितने घर तबाह हो जाते हैं, इस सच को बयान करती है कहानी 'एक लम्हे में'। चूँकि लड़की किसी और को प्यार करती है, और लाख कोशिशों के बाद भी वह उसे पा नहीं पाता अतः बदले और अपमान की भावना उसे हिंसात्मक बना देती है। और वह 'मेरी नहीं तो किसी की भी नहीं' वाले अंदाज में 'पिकनिक' से लौटते समय जानबूझ कर जीप गहरी खाई में गिरा देता है। हादसे में दो लोग मारे गए– उनमें से एक उस लड़की का प्रेमी था। बचा 'वह' और लड़की। 'वह' अपनी टाँगे गँवा चुका है, लेकिन उसे इसका अफसोस नहीं, उसे लड़की के प्रेमी के मर जाने से राहत मिलती है। यह नमूना है पुरुष की अंधी अधिकार भावना का एक 'लम्हें' में अपने साथ-साथ न जाने कितने लोगों की दुनिया उजाड़ देता है। काश, वह समझ सकता की प्रेम कोई वस्तु नहीं वह एक भावना है जिसे जबर्दस्ती नहीं पाया जा सकता। लेकिन वह शायद समझना ही नहीं चाहता इसीलिए तो हमारे आस-पास इस तरह की न जाने कितनी घटनाएँ प्रायः घटती रहती हैं।

'झर चुकने के बाद' कहानी ('मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह से) भी पुरुष की इसी अंधी अधिकार भावना; स्त्री के प्रति उसके वस्तुवादी दृष्टिकोण और उसके

भयानक परिणामों को दर्शाती है। 'एक लम्हें में' लड़की की शादी किसी से कर दी जाती है, उसकी मृत इच्छाओं और सपनों के साथ। जबकि 'झर चुकने के बाद' कहानी में एक जीती-जागती स्त्री मूक हो जाती है। शायद उसके मन ने उसे अपहृत कर लाने वाले लठैत पुरुष को, उसके छलावे को कभी माफ नहीं किया, जिसकी परिणति हुई- तीन 'प्री मैच्योर' बच्चों की मृत पैदाइश में। इन जगहों पर- दीवार में, आँगन में, और कमरे में तीसरे बच्चे के प्रतीक के रूप में रखा मिट्टी का पुतला, जहाँ वह रोज रात को मोमबत्ती जलाकर बारी बारी जाकर छूकर देखती है, मिट्टी के पुतले को दूध पिलाने का प्रयास करती है, उसे उछाल-उछालकर खिलाती है। यहाँ दरसल उसके मृत बच्चों की लाशें ही नहीं दबी हैं, उसकी इच्छाएँ, उसके सपने भी दबे हैं।

सृजन स्त्री का नैसर्गिक गुण है लेकिन तब, जब इस सृजन में उसे मन चाहे पुरुष का साथ मिले। वह सहचर चाहती है, उठाईगीर नहीं। लेकिन स्त्री के प्रति पितृसत्तात्मक समाज कभी कुछ सोचने की जहमत नहीं उठाता, और वह ऐसे ही घुट-घुटकर जीने के लिए अभिशप्त हो जाती है। धीरे-धीरे परिस्थितियों में बदलाव के कारण स्त्रियों की मानसिकता और स्थिति में भी बदलाव आ रहा है। दादी, नानी और अपनी माँ की सोच के बरक्स आज की जागरुक स्त्री आत्मदया और आत्मपीड़ा की स्थिति से ऊपर उठ कर सोचती है। 'जब पेड़ों से पत्ते गिरते हैं, कहानी की 'निक्की' में यह पीढ़ीगत बदलाव साफ दिखाई देता है।

जब उसकी माँ अपने आप में खोई हुई अत्यंत हताश स्वर में कहती है, "औरत सभी को सुख देती है ' देह का सुख मन का सुख। पर बदले में उसे क्या मिलता है– थोड़ी सी रोटी- थोड़ी सी दया।"[50] तो निक्की अत्यंत कड़वे स्वर में कहती है, "क्यूँ लेती हो थोड़ी-सी रोटी- थोड़ी-सी दया...।"[51] निक्की के इस प्रश्न का उत्तर उसकी माँ के पास नहीं है, क्योंकि उनके पास वह अन्तर्दृष्टि नहीं है जो निक्की जैसी आधुनिक लड़कियाँ पढ़-लिख कर प्राप्त कर रही हैं। उसके दादा की पीढ़ी के पुरुषों का मानना है कि "पुरुष से औरत का डर का रिश्ता होना चाहिए,

---

[50] जया जादवानी, 'जब पेड़ों से पत्ते गिरते हैं, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से),पृ.113

[51] वही, पृ.113

जिस दिन डर खत्म हो जाएगा, रिश्ता खत्म हो जाएगा।"[52] दरअसल, यह कहानी 'शाम की धूप में' (मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह से) कहानी का एक नया पाठ रचती है, थोड़े-से भिन्न परिवेश में। 'शाम की धूप में' कहानी में 'सेठ' और इस कहानी में 'दादा जी' कमोवेश एक ही मानसिकता रखते हैं, दोनों ही नाममात्र के पढ़े-लिखे हैं और विभाजन के समय सिंध से भारत आकर बस गए हैं। दिन-रात की कड़ी मेहनत से अच्छी-खासी सम्पत्ति बनाई जिसपर उन्हें बहुत फ़ख्र है। वहाँ 'सेठ' बुढ़ापे में आत्ममंथन की प्रक्रिया से गुजर कर पत्नी के प्रति अपने अन्याय पर पश्चाताप करते हैं और यहाँ पत्नी की मृत्यु के बाद 'दादा' को उनकी कमी महसूस होती है। यहाँ निक्की है अपनी दादी और माँ की दुर्दशा पर सोचने वाली। वहाँ बहू, बेटे और उनके बच्चे कोई 'सेठ' और उनकी पत्नी को पूछने वाला नहीं। यहाँ दादी के मरने के बाद भी कम-से-कम निक्की और उसके माँ-बाप 'दादा जी' की अवहेलना नहीं करते, निक्की उनके दुःख को समझती है। लेकिन वहाँ पोते भी 'सेठ' से बात नहीं करते। यह दरअसल, आत्मकेन्द्रित स्थिति का परिचायक है। लेखिका इस कहानी में कई समस्याओं पर एक साथ विचार करती है।

जया स्त्री की विविध छवियों और उसकी परिस्थतियों को अपनी कहानी में बुनती हैं। छोटी-छोटी घटनाओं को उनकी दृष्टि अत्यंत गंभीरता से पकड़ती है। पहले की वेश्या और आज की वेश्या की स्थिति और परेशानियों में क्या फर्क आया है इसे बयान करती है उनकी कहानी 'बाजार'। वेश्या तो पहले भी हीन स्थिति में थी, लेकिन आजकल उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार के कारण उसकी स्थिति और भी जटिल हो गई है। अब वह जिंदगी भर किसी की रखैल बनकर या 'कोठों' में नहीं रहती। लोग सुविधानुसार और अपनी जेब की क्षमतानुसार उसकी खरीद-फरोख्त करते हैं। वह बाजार में 'स्टालों' पर सजाई जाती है, ग्राहक पूरी तसल्ली करके ही उनकी कीमत लगाते हैं। कुछ यह काम हाथों से करते हैं तो कुछ 'डण्डों' से। सुन्दरता और शारीरिक गठन के अलावा अक्षतयोनि लड़कियों को विशेष तवज्जोह मिलती है, अब तो विदेशों में भी उन्हें 'सप्लाई' किया जाता है। साल में एक या दो बार ही उन्हें अपना नसीब आजमाने के लिए सीलन भरे अंधेरे कमरों से

---

[52] वही, पृ.115

निकलने को मिलता है। जब वे इन बाजारों में लाई जाती हैं खूब क्रीम, पाउडर लगाकर। ये भी हमारे ही समाज की स्त्रियाँ हैं जो सभ्य पुरुषों की वासनापूर्ति का कार्य करती हैं उनकी गंदगी को सहती हैं फिर भी ये 'कुल्टाएँ' हैं और इन्हें इस स्थिति में पहुँचने वाले पुरुष सभ्य समाज के नागरिक!

कुछ इसी तरह की एक औरत की कहानी है 'रुपान्तरण'। सामाजिक रूप से निचले तबके की एक औरत 'रामकली' अपना शरीर बेच कर रोजी-रोटी-चलाती है। वह अपनी इस स्थिति से संतुष्ट है उसे शादी-ब्याह, पति और बच्चे जंजाल लगते हैं। वह इन सबको बड़े घरों की 'मेहरिया लोगों' का काम मानती है। उसे इन सब बंधनों के बरक्स अपनी स्वतंत्र स्थिति ज्यादा प्रिय है। जब छेदीलाल के बहुत मनाने पर वह एक साल तक दो हजार रुपया प्रति महीना लेकर उसे एक बच्चा पैदा करके देने को तैयार होती है तब तक वह जानती भी नहीं कि एक माँ का अपने बच्चे से क्या रिश्ता होता है। नौ महीने बाद वह एक स्वस्थ्य बच्चे को जन्म देती है। न जाने कौन-सी अनजानी भावना के वशीभूत वह उसे अपना बच्चा मानने लगती है। 'चालीसवें' तक तो वह छेदी से उसे दूध पिलाने के नाम पर अपने पास रखती है। उसके मन में न जाने क्या-क्या उमड़-घुमड़ रहा है। वह छेदी से कैसे कहे कि वह अपना बच्चा उसे नहीं देना चाहती। 'एक डर, उसकी पसलियों में रेंग रहा है कल जब छेदी आएगा तो न जाने क्या होगा। वह तय करती है कि वह रोएगी, गिड़गिड़ाऐगी बिल्कुल नहीं'। वह छेदी से साफ-साफ कह देगी– "'देख छेदी अगर मैं चाहती तो इसे लेकर रातों-रात भाग सकती थी। तू क्या कर लेता? पुलिस को भी किस मुँह से कहता। वह पूछती नहीं तुझसे, एक छिनाल रंडी भाग गई, तुझे क्या? पर अब मैं रंडी नहीं हूँ रे, माँ बन गई हूँ। तुझसे दगा नहीं करना चाहती, पर इस बच्चे को भी नहीं देना चाहती। तेरी मेहरबानियों से मुझे यह दिन नसीब हुआ है – नहीं तो कौन जाने कभी यह दिन आता भी या नहीं – पर अब मुझे बख्स दे छेदी, मुझे जीने दे। यह मेरा है। मेरा हक है इस पर।' उसकी आँखों में छोटा-सा बादल उमड़ आता है। क्या कल कुछ नहीं होगा?"[53]

---

[53] जया जादवानी, रुपान्तरण, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से),पृष्ठ–87

यह डर दरअसल पूरी औरत जाति का है। जो उसका है, जिसे वह नौ महीने तक कोख में रखती है; पैदा होने के बाद पालती-पोसती है लेकिन उस पर हक होता है—पुरुष का। उसका उस बच्चे पर कोई हक नहीं। हक माँगे तो उसे लात मारकर निकाल दिया जाएगा और अगर बच्चे का मोह उसे न जाने दे तो वह पुरुष की गुलाम बनकर रहे जिंदगी भर। यह परिवार संस्था के पितृसत्तात्मक चरित्र की हकीकत है। कोख स्त्री की लेकिन इस पर हक पूर्णतया पुरुष का, वह तो बस मशीन है। रामकली न तो बच्चा छोड़ना चाहती है न छेदी को धोखा देना चाहती है, लेकिन क्या छेदी इसके लिए तैयार होगा?

इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' भी मातृत्व के चमत्कारी प्रभाव पर केन्द्रित है। एक भरे-पूरे समृद्ध परिवार की बहू जो अच्छी-खासी पढ़ी-लिखी भी है। भरे-पूरे संयुक्त परिवार जैसे ससुराल के विपरीत मायके में उसके घर चार ही लोग थे। लेकिन यहाँ तो लोग ही लोग हैं। व्यक्तिगत जैसा कुछ है ही नहीं। हर बड़ा अपने से छोटे पर अधिकार जमाता है। उसका पति विकी जो बाहर 'बिजनेस' करता है, कभी-कभी आता है। चाहकर भी बेचारा ज्यादा दिन नहीं रुक पाता कि पूरा घर पूछ-ताछ करने लगेगा। वह इस बात को समझती है अतः विकी को कभी 'धर्म संकट' में नहीं डालती।

संयुक्त परिवारों में किस तरह व्यक्ति की निजता और स्वतंत्रता बाधित होती है इसे लेखिका ने बड़े ही दिलचस्प ढंग से प्रस्तुत किया है। आजकल की सजग स्त्री इन सब स्थितियों के बीच भी अपनी निजता तलाशने का प्रयास जरुर कर रही है। कहानी की नायिका भी सारी स्थितियों को समझते हुए अपनी निजता बनाए रखती है। हमारे यहाँ अक्सर घरों में ऐसा होता है कि नई-नवेली बहू से हर कोई चिपका रहता है। भाई की अनुपस्थिति में यहाँ भी छोटी ननद भाभी के साथ सोना चाहती है। और बहू को देर रात तक पढ़ने का रोग है। ननद दूसरे दिन पूरे खानदान में खबर फैला देती हैं, फिर पचास लोग तस्दीक करेंगे। इतना ही नहीं वह भाई द्वारा भाभी के लिए भेजे गए प्रेम-पत्र भी चुरा कर पढ़ेगी, फिर कल को सारी बात किस्से के रूप में फैल जाएगी। इसके बाद का आलम तो हम सभी जानते हैं। मजाक और चुहलबाजी के बहाने व्यंग्य बाण चलाए जाएगें। इन सब कारणों से वह छोटी ननद को साथ सुलाने से मना कर देती है।

अब वह पहली बार माँ बनने वाली है। दसवाँ महीना शुरू हो गया सब मज़ाक करते रहते हैं। पति, विकी, दस दिन रूक कर वापस चला गया और सास एक शादी अटेण्ड करने। पीछे बड़ी ननद है उसका 'ख्याल' रखने के लिए। विकी के जाने के दो दिन बाद उसे सुबह 4-5 बजे से ही दर्द शुरु हो गया। सारी व्यवस्था कर ली अस्पताल जाने की, नहा-धो लिया, फिर ननद को जगाया। वह बोली, अभी देर है चाय बनाकर पी ले और टहलती रहे।

ऊपर से देखने पर सब सामान्य लगता है, लेकिन कहानी के भीतर कुछ प्रश्न सिमटे हैं हमारे परिवारों की स्थितियों से सम्बंधित। क्या ननद उसे खुद चाय बनाकर नहीं दे सकती थी। सास भी चाहती तो रुक सकती थी। ऐसे समय एक स्त्री को हिम्मत देने की खास जरुरत होती है लेकिन नहीं, हमारे समाज में संवेदनाओं की खासी कमी है। ननद रास्ते में उसे किस्से भी हौलनाक सुनाती जाती है, कि किसका बच्चा रिक्शे में हो गया और किसी कार की सीट पर ही। एक तो दर्द दूसरे डर से वह काँप जाती है। पीछे-पीछे उसका छोटा भाई आ रहा है स्कूटर पर। ख़ैर, इन सारी बातों के बाद अब वह हॉस्पिटल में है। दर्द की लहरें उसे मारे डाल रही हैं, और भी कई औरतें आस-पास बिस्तरों पर रो-चिल्ला रही हैं। विकी को खबर भी नहीं की गई। ननद का कहना है वह क्या करेगा आकर और फिर इधर बेटा होगा उधर हम फोन कर देंगे। अब उसको कौन समझाए-करेगा तो कुछ नहीं आकर, लेकिन इस समय उसकी बीबी को उसके भावनात्मक सहारे की सख़्त जरूरत है।

उसे असहनीय दर्द हो रहा है। नर्सें उसे 'दर्द लेने' को कह रही हैं, वह ठीक से कर नहीं पा रही। इतने में किसी ने कहा, "हाँ...हाँ...जरा जल्दी, नहीं तो बच्चा पानी पी जाएगा।"[54] इतना सुनना था कि वह अपना आप भूल गई, "असहनीय दर्द की लहरें.... पर वहाँ मृत्यु भय नहीं था। न कुछ और ... मेरे जेहन में सिर्फ बच्चा था... मेरा अपना बच्चा।"[55] "दर्द-दर्द... सिर्फ दर्द...कोई चीज़ बाहर आना चाहती है, पर दर्द की चट्टान है... मैं पुरज़ोर कोशिश करती हूँ हटाने की... कि आने वाले को जगह मिल सके... पसीने-पसीने मैं दाँत भींचती... मेरे मुँह से अजीब कराहें

---

[54] जया जादवानी, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, इसे शीर्षक संग्रह से, पृष्ठ 125
[55] वही, पृ.125

निकल रही हैं... मैं उन्हें सुनती... मैंने अपने, पहले से ही चबाए होंठ फिर दाँतों के नीचे भींचे और पूरी ताकत से उस चट्टान को धकेला... चट्टान ज़रा-सी खिसकी शायद...' 'शाबाश,.... बच्चे का सिर दिख रहा है... ज़रा-सा और ... थोड़ी-सी हिम्मत... ना...ना...हारना नहीं.. बिल्कुल नहीं।"[56] वह अपना सारा बल लगा रही है, "मुझे पता नहीं मेरी टाँगे हैं या नहीं.. मेरा जिस्म है या नहीं... कुछ और मुझमें है या नहीं.. चेतना एक ही जगह बार-बार टकरा रही है... 'ओ गॉड' पहली बार मैं जोर से चिल्ला पड़ी। फिसलती -सी कोई चीज बाहर निकली– जिसे हाथों में ले लिया गया...।"[57] यह एक बच्चे के जन्म की प्रक्रिया, जिसे सिर्फ माँ ही महसूस कर सकती है। इस अनकहे भाव को व्यक्त करने के लिए शब्दों, वाक्यों के बीच बार-बार 'स्पेस' छोड़ा गया है। वह, जो अभी-अभी माँ बनी है, जिसका सृजन उसकी आँखों के सामने है, उसे यकीन नहीं हो रहा कि उसके भीतर से ही यह जन्मा है। वह अपनी योनि को और कोख को अभी तक एक "गहरी-काली खोह" समझती आई थी, आज उसमें से ही रोशनी का सोता फूट पड़ा, "मुझे यकीन नहीं आ रहा था कि मेरे अंधेरों से ऐसी नदी भी निकल सकती है, जिसके तटों पर फिर पूरे के पूरे साम्राज्य बसाए जाएंगे। कोई नहीं जानता कि अंदर के पानियों में जो सपना काँपता है, कब असलियत का रूप लेगा, जब लेता है तो .....।"[58] वह 'समस्त सृष्टि के प्रति 'कृतज्ञता से भर जाती है। सब कहीं रंग ही रंग और जीवन रागोत्सव बन जाता है। उसके भीतर की सारी उथल-पुथल शान्त हो जाती है। अपनी बेटी में उसे अपनी सम्पूर्णता और सार्थकता नजर आती है। यह कहानी अपने 'स्व' के प्रति जागरुक एक स्वथ्य मानसिकता-सम्पन्न औरत की छवि प्रस्तुत करती है जो अपने शरीर को उसकी खूबियों के साथ पहचान रही है, और, जो अपनी सर्जनात्मकता का स्वागत अत्यंत प्रफुल्लित मन से करती है। बेटी का जन्म उसे अपने प्रति गर्व से भर देता है। वह जान चुकी है कि 'मुझे ही होना है बार.बार' कि उससे ही सृष्टि का चक्र चलता है, अब अपनी देह को वह अपनी नजर से पहचान रही है, कौन कर सकता है उसका सिवाय ऐसा खूबसूरत सृजन। "मुझे ही बिखरना है टूटकर, मुझे अपनी

---

[56] वही, पृ.125
[57] वही, पृ.125
[58] वही, पृ.127

नजर से पहचान रही है, कौन कर सकता है उसके सिवाय ऐसा खूबसूरत सृजन। "मुझे ही बिखरना है टूटकर, मुझे ही बनना है। सृष्टि के अन्त के बाद भी मुझे ही होना है..... लगातार..... बार-बार ....।"[59]

इसी के समानान्तर पितृसत्तात्मक मानसिकता की शिकार औरत, जो आधुनिक जरूर है लेकिन जागरूक नहीं, की तस्वीर को सामने रखती है कहानी 'मैं मनुष्य हूँ'। एक ओर आज की छद्म आधुनिकता में गुमराह स्त्री की छवि है, तो दूसरी और पितृसत्ता की 'एजेण्ट' स्त्री की। दरअसल दोनों स्थितियों में एक अदृश्य सम्बंध है। अगर वह एक सजग स्त्री होती तो गर्भ में पल रहे शिशु का ध्यान उसे बना रहता, और वह इस तरह डांस फ्लोर पर थिरक-थिरक कर सिगरेट व शराब न पी रही होती। दूसरे, गर्भ में पलने वाला शिशु लड़की है, यह सुनते ही वह रोने–चीखने न लगती। यह स्वतंत्रता नहीं बल्कि स्वतंत्रता का वहम है, जिससे जया जादवानी स्त्री को बार-बार सावधान करती हैं। चूँकि पितृसत्ता ने स्त्री के मन में कूट-कूट कर यह संस्कार भरा है कि वंश चलाने के लिए पुत्र आवश्यक है, बेटे की माँ बन कर ही स्त्री सम्पूर्ण होती है, और स्त्री ने इसे ही एक लम्बे समय से सबक की तरह याद कर रखा है। अतः स्वयं एक स्त्री होकर भी वह भविष्य की स्त्री नहीं वरन् पुरुष को जन्म देने में श्रेष्ठता समझती है। कन्या भ्रूण हत्या पर इतनी जबर्दस्त कहानी हिन्दी साहित्य में शायद ही लिखी गई हो। किस तरह जन्म से पहले ही एक शिशु को पता चल जाता है कि वह एक लड़की है, अनचाही और अवांछित, जिसकी किसी को जरूरत नहीं। हमारे देश में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान जैसे राज्य इस समस्या से बुरी तरह ग्रस्त हैं। पंजाब और हरियाणा तो उन्नति के शिखर पर हैं फिर भी स्त्री को लेकर यहां का पुरुष समाज पुराने सामंती मूल्यों की कैद में जकड़ा है।

इतनी भयंकर सामाजिक जटिलताओं के बाद भी आज की स्त्री बदली हुई मुद्रा में सामने आ रही है। खासकर पढ़े लिखे शहरी मध्यमवर्ग में। गिनी चुनी संख्या में ही सही लेकिन स्त्री शीर्ष नेतृत्व के केन्द्रों पर भी पहुँच रही है। सार्वजनिक क्षेत्र हो या व्यक्तिगत हमारे देश में स्त्री ने अपनी अभूतपूर्व क्षमता का

---

[59] जया जादवानी, मुझे ही होना है बार-बार', इसी शीर्षक कहानी संग्रह से, पृष्ठ.78

अहसास दिलाया है। सच्चाई यह है कि हमारे यहां परिवर्तन की गति धीमी है, लेकिन यह जड़ों से जुड़ी हुई है। अभी सामाजिक परिपक्वता आने में वक्त लगेगा किन्तु पढ़े-लिखे, विशेषतया, महानगरीय समाज में बदलाव की बयार चल पड़ी है। परिस्थितियों का दबाव और ज्ञान के प्रकाश के कारण आई मानसिक मुक्ति इसका सबसे प्रमुख कारण है।

जया जादवानी सुशिक्षित और मानसिक रूप से सजग इस मध्यवर्गीय स्त्री में स्त्री जाति की मुक्ति हेतु काफी सम्भावनाएँ खोजती हैं। क्योंकि वास्तविक मायनों में एक मुक्त व्यक्ति दूसरों में भी मुक्ति की चेतना का प्रसार करता है। अपने साथ मनुष्य मात्र की मुक्ति का स्पप्न देखने वाली आधुनिक स्त्री की यात्रा सतत् जारी है।

तीसरा अध्याय

जया जादवानी की कहानियों में स्त्री-मुक्ति का स्वरूप एवं भाषागत वैशिष्ट्य

3.1 'स्त्री' जो नींद से जाग रही है।

जया जादवानी की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री न केवल अपने 'स्व' के प्रति जागरूक है वरन्, वह अपने आस-पास के परिवेश को भी अत्यंत सजगता के साथ देखती-समझती है। वह उन संगठित धारणाओं, विश्वासों, जो उसे स्त्री के रूप में व्यवस्था में दोयम दर्जा दिलाते हैं, की तह तक जाकर उनकी वास्तविकता समझ लेने के बाद उनसे अपनी मुक्ति की राहें तलाश करती है। जया जादवानी के यहाँ 'अस्मिता' का अर्थ एक निरंतर सजग आत्म चेतना के माध्यम से अपने चुनावों की मूल्यवत्ता का आकलन और अपनी स्वतंत्रता और बंधनों के परिप्रेक्ष्य में अन्ततः स्वतंत्रता की असम्भवता और असहयता के कारणों की खोज है।

जया जादवानी की कहानियों में, "मुक्ति नायिका के उस व्यक्तित्व से झलकती है जो अलग भाँति का सजग जीवन जीती है या वैसा जीवन जीने के लिए झटपटाती है।"[1] बदली हुई परिस्थितियों ने उसे समाज में अपनी स्थिति और भूमिका को समझने की जो विशेष अन्तर्दृष्टि प्रदान की है, उसके कारण वह सब-कुछ साफ-साफ देखने लगी है। वह हर बात को तार्किकता के तराजू पर तौलने के बाद ही उसे स्वीकारने या न स्वीकारने का निर्णय करती है। अब तक सिर्फ दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्य निभाने वाली स्त्री अब अपने प्रति भी अपना कर्त्तव्य कर्त्तव्य समझने लगी है।

"करीब सौ साल पहले नोरा ने हेल्मर से पूछा, 'तुम क्या मानते हो, मेरा सबसे पवित्र कर्त्तव्य क्या है? और जब उसने कहा, अपने पति और बच्चों के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य तो वह असहमत हुई और बोली–मेरा एक और कर्त्तव्य है, उतना ही पवित्र... अपने प्रति मेरा कर्त्तव्य... मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ–उतनी ही जितने कि तुम हो... या हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करूँगी ही। मैं जानती हूँ तोरवाल्ड, कि ज्यादातर लोग तुमसे सहमत होंगे, किताबों से तुम्हें इसका परवाना मिला है; लेकिन अब मैं, ज्यादातर पाऊँगी। मुझे चीजों पर खुद सोच-विचार करना होगा और उन्हें समझने की कोशिश करनी होगी।"[2]

---

[1] जया जादवानी, साक्षात्कार से

[2] इब्सन, डॉल्स हाउस, एक्ट III, हर्मेन ग्रीयर 'बधिया स्त्री' (अनु. मधु वी. जोशी), पृष्ठ-20

जया जादवानी की कहानियों में स्त्रियाँ इसी रूप में अपनी चीजों पर सोच-विचार कर उन्हें समझने की कोशिश करती हैं और अपनी मुक्ति के लिए छटपटाती हैं, प्रयास करती हैं। उनके प्रथम कहानी संग्रह 'मुझे ही होना है बार-बार' की स्त्रियाँ 'नोरा' की ही प्रतिकृतियाँ (प्रतिमूर्तियाँ) हैं। अपनी स्थिति को लेकर उनमें अजीब हलचल और बेचैनी है, एक सतत् द्वन्द्व उनके मन में चलता रहता है। वह अन्तर्जगत में अपने आपसे आत्मसाक्षात्कार करती हैं।

जया जादवानी बहिर्जगत की कड़वाहटों के बीच अपने स्त्री पात्रों की भीतरी दुनिया में उतरती हैं क्योंकि उन्हें पता है कि कुछ पाने से पहले अपने आप को थहा कर पुनर्संयोजित करना आत्मोपलब्धि का चरम बिन्दु है। पहले संग्रह की कहानियों में इसीलिए स्त्री के अन्तर्जगत को पर्त-दर-पर्त उघाड़ा गया है। अपने समय, समाज और संस्कृति की समीक्षा इन कहानियों की स्त्री अत्यंत तटस्थ ढंग से करती है। इस प्रक्रिया में एक सजग स्त्री आत्मसाक्षात्कार की अग्नि परीक्षा से गुजर कर आत्मविस्तार की ओर बढ़ती है।

'मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह की कहानियों में आत्मसाक्षात्कार अधिक है तो 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है संग्रह की कहानियों में आत्मविस्तार। इन दोनों संग्रहों की कहानियाँ स्त्री मुक्ति की दिशा में चरणबद्ध प्रयास की द्योतक हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आधारभूत संस्थाओं के तटस्थ विश्लेषण के साथ-साथ स्वयं का आत्मसाक्षात्कार ही 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' संग्रह की सशक्त स्त्री छवियों को गढ़ सका है। बाह्य दुनिया की विद्रूपताओं बरक्स के स्त्री-मन की उथल-पुथल 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों का भाष्य है। कहानियों में एक ओर समाज, परिवार और परम्पराओं के जड़ बंधनों को दिखाया गया है तो दूसरी ओर इन सब पर विचार करती स्त्री के अन्तर्मन की पर्तों को खोला गया है। वह खुद को पूर्ण मनुष्य बनाने की दिशा में प्रयासरत है। वह अंधकार पर हाय-तौबा मचाने के बजाय एक छोटा-सा दीपक जलाना ज्यादा उचित समझती है। समस्या का ज्ञान हो जाने के बाद वह अब समस्या का समाधान खोजने की दिशा में अग्रसर है।

जया जादवानी ने एक सजग स्त्री दृष्टि से समाज की समस्याओं को उजागर किया है, जिसके केन्द्र में निश्चित रूप से स्त्री और उसके प्रश्न हैं।

कहानियाँ हमारे जाने-पहचाने जीवन के अनदेखे, अनजाने रह जाने वाले पहलुओं से हमें वाक़िफ कराती हैं। स्त्री की भूमिका की पड़ताल के साथ-साथ विराट मानव जीवन और उसकी समस्याओं का जायजा भी कहानियों में लिया गया है, जिस पर अलग से ध्यान देने की जरूरत है।

कहानी 'शाम की धूप में' में लेखिका ने एक ऐसी स्त्री के अन्तर्जगत को खोला है, जिसने पति-बच्चों और परिवार के लिए जिन्दगी होम कर दी। लेकिन कभी किसी ने उसकी तकलीफ जानने का प्रयास नहीं किया। बेटे और बहूएँ तो दूर की बात है, पति ने भी कभी उसका मन जानने की कोशिश नहीं की। और अब, जब बुढ़ापे में खुद 'सेठ' को बहू, बेटे नहीं पूछते तो उन्हें पत्नी के साथ अपने दुर्व्यवहार का आभास मिलता है। लेकिन उन्होंने तो कभी-भी पत्नी के साथ सुख-दुख बाँटने का संबंध नहीं रखा तो आज किस मुँह से उसके पास जाएँ। बहुओं का 'सेठ' के प्रति दुर्व्यवहार उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे मन ही मन बेटों-बहुओं को कोसती हैं कि तुम्हारे बच्चे भी तुम्हारे साथ ऐसा ही बर्ताव करेंगे, तब पता चलेगा। लेकिन अगले ही पल उनका मन सेठ के लिए भी वितृष्णा से भर गया। अपने सम्पूर्ण पिछले जीवन की तस्वीर उनकी स्मृति में उभर आई, "सारी जवानी बादियों की तरह सेवा की, कौन-सी कद्र की तुमने। सुख लेने देने का तो हमारा रिश्ता ही नहीं रहा कभी। क्या नहीं किया तुम्हारे लिए? क्या था तुम्हारे पास? पाकिस्तान में थे, तब भी रोजगार की मुसीबत। दिन भर सास के साथ मशीन चलाती और घर की रोजी-रोटी चलती, बँटवारा हुआ तो कैंपों में रहे, वहाँ भी मशीन चलाई। पेट से थी जब बँटवारा हुआ था, आपाधापी में बच्चा भी नहीं रहा। कभी कच्चा कभी पक्का, जो मिला, खाकर गुजारा किया, मगर तुम्हें हमेशा अच्छा दिया।"[3] लेकिन इस सबका परिणाम क्या मिला इस औरत को? "न औलाद अपनी हुई न तुम।"[4]

वर्तमान पीढ़ी की शिक्षित और जागरुक औरत उस आत्मपीड़ा की स्थिति से बाहर आकर स्थिति का विश्लेषण करती है क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों ने उसे इस तरह सोचने की दृष्टि दी है। पुरुष से उसके रिश्ते हों या परिवार, समाज और संस्कृति में उसकी भूमिका का प्रश्न–आधुनिक स्त्री सब कुछ पर अत्यंत तटस्थ

---

[3] जया जादवानी, 'शाम की धूप में', मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से) पृष्ठ-20
[4] वही, पृष्ठ-20

दृष्टि से विचार करती है और अपनी सार्थकता तलाशती है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया सबसे पहले मानसिक स्तर पर घटित होती है। वह स्त्री जो अब तक संस्कारों, परम्पराओं और व्यवस्था की जकड़न में कैद थी, जो पढ़ी-लिखी, संवेदनशील किन्तु रुढ़ियों की कब्र में सोई थी, अब जाग रही है। आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया ने उसे मानसिक रूप से मुक्त किया है।

'लड़की आसमान में' कहानी बचपन को छोड़ किशोरावस्था की दहलीज़ पर कदम रखने वाली लड़की की कहानी है। बड़ी होती लड़की पर समाज न जाने कितने बंधन और वर्जनाएँ लादता है और इस प्रक्रिया में उसकी आँखों के सपने भरने लगते हैं। समाज इजाज़त ही कहाँ देता है एक लड़की को सपने देखने की। इसी हकीकत को बयान करती है यह कहानी। लेखिका ने जिस तरह सपनों और फंतासी का सहारा लेकर बड़ी होती लड़की के अन्तर्मन को उकेरा है वह अपने आप में विलक्षण है। 'एक लड़की जिसे लगता है कि लोगों के साथ-साथ मकान भी उसे घूर-घूर कर देखते हैं। जिसकी आँखें में अब सपने सिर्फ़ रात को ही आते हैं, चोरी-छुपे कि कोई उन्हें देख न ले। अगर देख लिया तो स्वप्न और लड़की दोनों को कत्ल कर दिया जाएगा। एक तरफ उसके सपने हैं दूसरी तरफ यथार्थ। उसके मन में अजीब उथल-पुथल मची हुई है। इस उथल-पुथल के बीच वह सोचती है कि 'कत्ल तो दोनों जगह होना है।"[5] तो फिर वह किसे चुने। "वह दोनों के मध्य उदास खड़ी है। रोशनी की एक धुँधली सी फाँक पर .... अभी भी उसने फैसला नहीं किया है वह इस पर जाए या उस पार.... इस धरती और आकाश के बीच कहाँ है वह...? इन सारे दृश्यों में कौन-सा दृश्य है, जो उसका है....। जहाँ वह हो सकती है वह अपना आना देखती है और अपना जाना और अपना ठिठकना.... वह अभी ठिठकी खड़ी है।"[6]

जाहिर है कि फैसला लेने के लिए अभी उसे खुद को भीतर से बहुत मजबूत बनाना होगा, अपनी स्थिति और अपने 'होने' के प्रति उसकी जागरुकता ही उसकी मुक्ति की वाहक बनेगी। अपने सपनों को चुनने की प्रक्रिया में उसे बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। वह अभी ठिठकी खड़ी है, क्योंकि विद्रोह और

---

[5] जया जादवानी, लड़की आसमान में मुझे ही होना है बार.बार', (कहानी संग्रह से) पृष्ठ-27
[6] वही, पृष्ठ-37

विरोध की हिम्मत एकाएक नहीं आ जाती। लेकिन वह अपनी स्थिति पर विचार करने की प्रक्रिया में आगे बढ़ अपनी मुक्ति की हिम्मत भी जुटा लेगी। यह लड़की विचार क्रम में एक और कदम आगे बढ़ती है कहानी 'तीसरा कक्ष' में।

तीन कक्षों को प्रतीक बनाकर एक स्त्री के भिन्न सामाजीकरण की प्रक्रिया को अत्यंत स्पष्ट रूप से सामने रखा गया है। स्त्री तीन कक्षों में जीती है। एक कक्ष है उसका बचपन और विवाह पूर्व जीवन, 'दूसरा कक्ष वैवाहिक जीवन और तीसरा कक्ष' उसका अपना अन्तर्मन। पहले कक्ष और दूसरे कक्ष में आदर्श स्त्री के साँचे में ढाली जाती है। वह आगे चलकर पुरुष के मनचाहे साँचे में ढल सके, इसके लिए पहले कक्ष में ही तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं, अर्थात् एक लड़की को 'कैसा होना चाहिए' इस दिशा में उसका सामाजीकरण किया जाने लगता है। उसे बचपन में अच्छी 'बच्ची' तो किशोरावस्था में आते ही 'अच्छी लड़की' बनने की 'ट्रेनिंग' दी जाती है। उसकी माँ उसे किताबें छोड़कर 'घर के काम' सीखने को कहती है क्यों कि वास्तविक दुनिया और किताबों की दुनिया में बहुत फर्क होता है। लेकिन अपने सपनों, विचारों और अपने भीतर होने वाले परिवर्तनों को वह किससे कहे। वह जानती है कि 'शर्म' का गहना जबर्दस्ती उसके ऊपर लादा गया है। और अब बारी आती है दूसरे कक्ष की। जहाँ पति-पुरुष उसे बिल्कुल अपने मनमाफिक 'तराशना' चाहता है। कपड़े, गहने, सौन्दर्य–प्रसाधन और अब यह लो 'बच्चा'।

यह औरत अपने आपको भरसक एक 'अच्छी औरत' बनाए रखने का प्रयत्न करती है। पुरुष उसे बच्चा संभालने को कहता है लेकिन खुद को न भूलने की हिदायत भी देता है। लेकिन वह क्या करे उसे स्वयं के बारे में 'सोचने' की बीमारी लग गयी है। लाख मना करे लेकिन कुछ विचार उसका पीछा नहीं छोड़ते और वह सोचती है कि "भूल तो मैं खुद को गई हूँ हाय-जब मैं छोटी थी, तब भी मेरी गोद में खिलौना था। अब मैं बड़ी हो गई हूँ, अब भी मेरी गोद में खिलौना है। खिलौना? नहीं-नहीं यह तो मेरा बच्चा है, कैसी बातें सोचती हूँ मैं भी, अब इसी को संभालना, पालना मेरा कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य? इसके अलावा भी मैंने जाना है कुछ। कुछ भी नहीं बदला मेरे लिए और मैं इतनी बड़ी हो गई"।[7]

---

[7] जया जादवानी, तीसरा कक्ष, 'मुझे ही होना है बार-बार', (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-68

चूँकि, यह स्त्री अपने बारे में और परिस्थितियों के बारे में सोचने लगी है, इसलिए ज्यादा दिन अपने आप को दबा कर नहीं रख सकती "अब ये क्या होता जा रहा है मुझे। मैं क्यूँ तुम्हारे बनाए आईनों में अपना चेहरा देखने से इंकार कर रही हूँ। हाँ मेरी आँखें खूबसूरत है, पर मेरी हैं। इससे वही देखूँगी, जो मुझे अच्छा लगता है। अब देखो न, हमारे लिए सुख कोई और चुनता है, हम ले लेते हैं। हमारे लिए दुख कोई और चुनता है हम ले लेते हैं। हम किसी और के आईने में अपना चेहरा देखते हैं।.... आईना उसके पास है। आईना उसका है। आईना वह खुद है। बदलता है वह, बदलते हैं हम। उसने तय कर रखे हैं हमारे हँसने और रोने के नियम। वह हमें कपड़ा पहने के ढंग सिखाता है। वह हमें अच्छा लगने के ढंग सिखाता है। वह हमें हमारी जगह दिखाता है। कहता है बैठ जाओ, हम बैठ जाते हैं। अब, देखो न, उसने मुझे पूरा तराश दिया है और अब कहता है–देखो मैंने तुम्हें क्या से क्या बना दिया? सचमुच?"[8] अब जब उसकी सोच पर पड़ा हुआ पितृसत्तात्मक संस्कारों, मूल्यों विश्वासों और रुढ़ियों का पर्दा हट गया है तो अब वह अपने बारे में और भी बहुत कुछ सोचने लगी है। आखिर क्यों वह इस तरह दूसरे के बनाए मानदण्डों और नियमों को मानती है? क्यों उसी के लिए सारे नियम बने हैं? पुरुष और स्त्री के लिए अलग-अलग व्याख्याएँ क्यों हैं नियमों और सिद्धान्तों की? अब वह तीसरे कक्ष अर्थात् अपने अन्तर्मन में, जहाँ वह अपनी समस्त खूबियों-खामियों के साथ जीती है, अपने बंधनों को तोड़ने के बारे में सोच रही है। लेकिन हमारा समाज अपने बारे में सोचने की अनुमति स्त्री को नहीं देता, और अगर वह सबसे छिपते-छिपाते अपने भीतर कुछ सोच इजाजत भी ले, तो उसे कहने की इजाज़त तो कतई नहीं। "पर हमारे यहाँ तो सोचना इतना बुरा है कि सोचा हुआ कह भी नहीं सकते। अच्छा बताओ, जो बात किसी एक के लिए सही है, दूसरे के लिए गलत कैसे हो सकती है? अब देखो न, मैं चाह कर भी बुरी न बन सकी। तो क्या मैं बुरी नहीं हूँ? हूँ तो। पर क्या करूँ? तुम्हें ही मुझमें देवी ढूढ़ने की आदत है तो मैंने भी बनने की लगा ली। अब मुझे जो बनना है, बनकर दिखा दूँगी तो ... तुम्हीं दिक्कत में पड़ोगे न। नहीं, अब मुझे दिक्कत की परवाह थोड़े है, वो तो

[8] वही, पृष्ठ-69

संस्कारों वश मैं ऐसी ही रह गई। और अब जब संस्कार भी शर्म की तरह फटे कपड़ों -से मेरे जिस्म पर झूल रहे हैं तो तुम्हीं बताओ न कितनी देर—मैं इस सबमें रह सकती हूँ। जब तक मैं चाहूँ, बस। मेरा जीवन इन्हीं चार अक्षरों पर टिका है —जब तक मैं चाहूँ। जिस दिन मैंने ही न चाहा, क्या कोई भी रोक सकेगा?"[9]

यह है आज की स्त्री जो सच को बहुत आर-पार से देख रही है। उसके अन्तर्मन में न जाने कितना कुछ भरा पड़ा है, उसकी इच्छाओं, उसके सपनों की लाशें। न जाने कितने विचार, जो बाहर न आ सकने के कारण वहीं पड़े-पड़े सड़ गए, लेकिन उन सबके बीच ही उसे अपने लिए उम्मीद की किरण भी दिख रही है। अब वह इस सुरंग जैसे अपने अन्तर्मन में गहरे उतर कर सब कुछ जानना चाहती है। "और मैं इसमें उतर गई... उतर कर उस पार चली गई ... और फिर वापस नहीं आई।"[10] संस्कारों के धागे तोड़कर अपने 'स्व' की खोज में, अपने सपनों को जीने निकली औरत फिर कभी वापस पुराने रूप में आ भी नहीं सकती। वह अपने अस्तित्व की सार्थकता की तलाश में निकल गई है एकदम नए रूप में सामने आने के लिए।

दरअसल हमारे समाज में स्त्री का व्यक्तित्व 'आइसबर्ग' की तरह होता है। जितना वह ऊपर से दिखाई देती है, वह केवल उसका एक हिस्सा है, तीन हिस्से तो उसके भीतर डूबे हैं। यह उसका अन्तर्मन है। अगर स्त्री को सम्पूर्णता में जानना है तो पुरुष को उसके अन्तर्मन में उसके साथ-साथ उतरना होगा। अर्थात् उसके सपनों, उसकी इच्छाओं और उसके दुःखों-सुखों को समझना होगा। लेकिन पुरुष है कि सिर्फ उससे 'बॉर्डर' पर मिलना चाहता है, जितने की उसे जरूरत है सिर्फ उतना। स्त्री चाहे भी तो भी वह जानना ही नहीं चाहता उसके भीतर की दुनिया। वह तो बस उसे देह तक ही जानता है और वह भी आधा-अधूरा। वह उसे ज़िद करके ले जाती है एक रोज़ अपने भीतर—लेकिन वह 'रिस्क' नहीं लेना चाहता, ज़रा से रोमांच के लिए। वह उसे मना रही है और भीतर चलने को, "थोड़ी दूर, फिर तुम अपने को भूल जाओगे, तुम खो जाओगे इन वादियों में।"[11] सचमुच अगर पुरुष

---

[9] वही, पृष्ठ-69

[10] वही, पृष्ठ-70

[11] जया जादवानी, जहाँ कोई नहीं जाता, मुझे ही होना है बार.बार, (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-48,

अपने ऊपर ओढ़ा गया 'पुरुषत्व' का चोला छोड़कर एक मनुष्य के रूप में स्त्री को समझने की कोशिश करे तो शायद उनके बीच की दूरियाँ खत्म हो जाएँ। लेकिन उसे अपना ऐसा ही 'होना' इतना प्यारा है कि वह खुद को बदलना नहीं चाहता, यही उसकी पहचान है। "लेकिन मैं खुद को खोना नहीं चाहता, मुझे जाना है।' उसने उसका हाथ छोड़ दिया और वापसी के लिए दौड़ पड़ा।"[12] और स्त्री, वह अब और उससे इस तरह 'बॉर्डर' पर नहीं मिल सकती। "क्योंकि यहाँ आने के बाद वापस जाना उसे मुश्किल लगता है। वह यहाँ खोना चाहती है, पाना चाहती है। "अकेली नहीं–किसी के साथ... अकेला सुख उसे छोटा लगता है। वह विस्तार चाहती है, दुनिया की हर खूबसूरत चीज़ की तरह...। खुशबू, हरियाली, हँसी, धूप, बारिश....। ये जब आती हैं तो किसी को नहीं छोड़तीं। वह अपने निस्सीम विस्तार में खोना चाहती है किसी के साथ...।"[13] वह अपने मनभावन सहचर पुरुष की प्रतीक्षा कर रही है, और इसीलिए जब 'वह' दोबारा फिर 'बेताबी से भरा' आता है तो वह पूँछती है–

"क्या चाहिए?"

"तुम।"

"मैं यहाँ नहीं रहती।"

"कहाँ रहती हो?"

"जहाँ कोई नहीं जाता।"[14]

लेकिन वह खड़ा है, उसे उसकी बातें हमेशा बड़ी अजीब लगती हैं। वास्तव में यह संभ्रम की स्थिति है परिस्थितियों के बदलने से स्त्री की भूमिका में जो बदलाव आया, पुरुष उसे अभी स्वीकार नहीं कर पा रहा है। और स्त्री अपने को जानने की प्रक्रिया में और गहरी उतरती जा रही है।

"नहीं वह उतरी नहीं है अभी, उतरने की प्रक्रिया में अधूरी खड़ी है।"[15] वह सहचर का इंतजार कर रही है। वह चाहती है कि कोई जाने– वह कहाँ रहती है।

---

[12] वही, पृष्ठ-48
[13] वही, पृष्ठ-49
[14] वही, पृष्ठ-49
[15] वही, पृष्ठ-49

फिलहाल तो वह अपने अन्तर्मन की गहराइयों में रह रही है 'जहाँ कोई नहीं जाता'।

मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की पोल खोलती है कहानी "वहाँ मैं हूँ।" सामाजिक संबंधों के साथ-साथ यहाँ पति-पत्नी के संबंधों में भी दिखावा हावी है। संस्कारों में जकड़ी स्त्री सब-कुछ जान-बूझकर भी अनदेखा करती रहती है। दरअसल उसे बचपन से ही ऐसा करने की आदत है। और उसने रास्ता भी बहुत सुरक्षित खोजा है अपने लिए–वह मन को परे कर लेती है और देह को छोड़ देती है – भुगतने को। चाहे पति के साथ शारीरिक संबंध हों, या सामाजिक संबंध वह देह के स्तर पर ही हर जगह शामिल है। किसी को शक न हो इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रगाढ़ प्रेम का दिखावा करते हैं, "हमारे बीच का प्रेम मर चुका था और अब हम उसकी लाश को फेंक नहीं रहे थे, बार-बार सँभाल रहे थे, भ्रम की तरह।"[16] लेकिन स्त्री और पुरुष कोई भी इस स्थिति को स्वीकारना नहीं चाहता, "किसी दिन जब हमारा ड्राइंगरूम बाहर से आए लोगों से भरा होता। हम उसी ठठरी को झाड़-पोंछ अच्छे से सजा देते।"[17] और देखने वाले बड़ी हसरत से देखते हैं कि हाय! हमारे पास तो कुछ भी नहीं, और इनके पास कितनी खुशियाँ हैं! लेकिन भीतर से यह हर एक संबंध की सच्चाई है।

स्त्री जो अब तक सब-कुछ ज्यों-का-त्यों चलाने की कोशिश कर रही थी, अब वह इस सबसे छुटकारा चाहती है। उसने तय कर लिया है कि अब वह अपनी देह को यह सब भुगतने के लिए नहीं छोड़ेगी। वह जान गई है कि देह और मन मिलकर उसके वजूद को बनाते हैं इसलिए अब देह और मन को अलग-अलग दिशाओं में रखकर वह अपने आपको और नहीं बिखरने देगी। जिस क्षण उसने गहन चिन्तन-मनन के बाद इस हकीकत को स्वीकार किया, वह क्षण उसके जीवन का सबसे अहम क्षण बन गया। अब उसे द्वन्द्व से मुक्ति मिल गई।

हालाँकि वह बाह्य यथार्थ की कटुता से वाकिफ़ है, लेकिन फिर भी वह इस क्षण को जितना हो सके, विस्तृत कर लेना चाहती है। "मैंने उस लम्हे को अच्छी तरह फैला लिया– अपने अंदर से बाहर तक। हाँ वह फैल सकता है। पर जितना

---

[16] जया जादवानी, वहाँ मैं हूँ, मुझे ही होना है बार-बार, (कहानी संग्रह से) पृष्ठ-27
[17] वही, पृष्ठ-27

फैलता जाता है, कमजोर होता जाता है। उसकी परत किसी भी क्षण टूट सकती है और मैं उसकी सुरक्षा के दायरे से बाहर फेंकी जा सकती हूँ। जैसे किसी झील पर एक हल्की-सी परत बर्फ की जम जाती है, बेहद कड़ाके की ठण्ड में... हम सोचते हैं हम निकल जाएँगे। पर बर्फ टूट जाती है और हम अंदर जा गिरते हैं।"[18]

यहाँ लेखिका ने अत्यंत सटीक उदाहरण के माध्यम से स्त्री-मुक्ति की राहों की कठिनाइयों का चित्रण किया है। स्त्री में अपने बारे में सोचने-समझने की जो मानसिक चेतना जागी है, उससे वह अपने लिए स्वतंत्रता के स्वप्न देखने लगी है, लेकिन अपनी राह की कठिनाइयों से भी वह वाकिफ है। फिर भी यह स्त्री जितना सम्भव हो सके, अपनी मानसिक जाग्रति के क्षण को जीना चाहती है, "पर जब तक ...बर्फ टूटने के पहले तक मैं तो हूँ और वह लम्हा भी है ही... बहुत है।"[19] अब तक पुराने संस्कारों की कब्र में सोई हुई स्त्री अगर अपने बारे में सोचने लगी है तो यह भी कोई कम महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं है। मानसिक जाग्रति ही भावों और विचारों के अबाध प्रसार की दिशा में सबसे पहला कदम है, और आज की संवेदनशील स्त्री इस दिशा में आगे बढ़ चुकी है।

यह स्त्री अपनी सम्पूर्णता में पूरे प्राणवेग से जाग रही है। वह जान गई है कि उसके बिना सृष्टि का चक्र अधूरा है। वह अपने को हीन नहीं मानती क्योंकि उसे पता चल गया है अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बारे में, अपनी सृजनात्मक क्षमता के बारे में। अब उसे रोका नहीं जा सकता है, चाबुक की मार उसके भीतर की चेतना को और जगाएगी, जितना उसे दबाया जाएगा वह उतनी ही सशक्त होकर उभरेगी। वह खतरों से नहीं डरती। वह समस्त बंधनों को तोड़ने को आतुर है क्योंकि वह मनुष्य के स्तर पर जीना चाहती है। पितृसत्ता द्वारा निर्धारित चौखटों से बाहर निकल कर खड़ी आधुनिक स्त्री को अब वापस उन्हीं चौखटों में नहीं बाँधा जा सकता। वह जानती है कि सृष्टि का प्रारम्भ भी उसी से हुआ है और सृष्टि के अन्त के बाद भी वही होगी। वही जन्म देगी अपनी देह से मनुष्य को, वही 'तराशेगी चट्टानों को'। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसमें है और वह इस सम्पूर्ण सृष्टि में। इस रहस्य

---

[18] वही, पृष्ठ-31
[19] वही, पृष्ठ-31

को जानकर ही वह गर्व से भरकर कह उठी है "मुझे ही होना है... लगातार... बार-बार... ।"[20]

अपनी सरहदों को लाँघने हेतु मानसिक रूप से तैयार यह स्त्री 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' की कहानियों में मुखर होकर उभरी है। चेतना के स्तर पर आत्मसाक्षात्कार कर चुकी यह स्त्री अब अपने भीतर से बाहर की ओर मुड़ने लगी है। अब वह अपने निर्णय खुद लेने लगी है। 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों में जहां उसने अपनी शक्ति और सीमाओं को पहचाना और अपनी स्थिति की सार्थकता तलाशने के लिए भीतर-ही-भीतर गहरी उथल-पुथल की प्रक्रिया से गुजरी वहीं अब वह समाज में अपनी स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए कमर कस कर खड़ी है।

भले ही राह की कठिनाइयाँ उसे लहूलुहान कर दें लेकिन वह अपने निर्णय को अमल में लाने हेतु प्रयास ज़रूर करती है। वह अब सिर्फ भीतर-भीतर घुटती नहीं, समाज से नज़रें मिलाकर अपने सवालों का जवाब माँगती है। आत्मविश्लेषण की लम्बी प्रक्रिया से गुजरकर वह अब अपने 'स्व' और अपने समय, समाज के स्वस्थ्य एवं संतुलित विकास हेतु तैयार खड़ी है। परिवार और समाज के स्त्री के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार ने उसे किस हद तक कुण्ठित किया है, यह भी इस संग्रह की कहानियों का कथ्य है।

बदलती स्त्री छवि ने स्त्री-पुरुष संबंधों को भी प्रभावित किया है। कहानियाँ इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान खींचती हैं कि चूँकि पुरुष के पितृक संस्कारों के कारण ही स्त्री के जीवन में कठिनाइयाँ पैदा हुई हैं अतः इन समस्याओं का हल पुरुष को ही खोजना होगा। उसके सहयोग के बिना न स्त्री की समस्याएं सुलझेंगी ओर न ही स्त्री-पुरुष संबंधों में रागात्मकता कायम हो पाएगी। एक-दूसरे की स्वतंत्रता और इच्छाओं के प्रति सम्मान तथा भावनाओं की कद्र स्त्री-पुरुष के रिश्तों और परिवार एवं समाज के लिए मजबूत नींव का कार्य करेगी।

जया की कहानियों में आई स्त्री छवियाँ स्वतंत्रता को सिर्फ अपने लिए ही नहीं वरन् मनुष्य मात्र के लिए अर्जित करने हेतु प्रयास करती हैं। कहानियों में

---

[20] जया जादवानी, मुझे ही होना है बार.बार, इसी शीर्षक कहानी संग्रह से, पृष्ठ-78

सजग और सतर्क नायिकाएँ अपनी सार्थकता की तलाश सम्पूर्ण व्यवस्था के संदर्भ में करती हैं क्योंकि वे इसी समाज का हिस्सा हैं न कि समय और समाज से परे कोई अमूर्त सत्ता। अर्थात् अपनी स्थिति पर जागरुकतापूर्वक विचार और इस स्थिति से बाहर आने के लिए सतत् ईमानदार प्रयास ही जया जादवानी की कहानियों का लक्ष्य है। अपने 'स्व' के प्रति जागरुक स्त्री ही अपनी और दूसरों की मुक्ति की दिशा में सार्थक प्रयास कर सकती है। कहानी 'कयामत का दिन उर्फ़ क़ब्र से बाहर' स्त्री की इसी जाग्रति की ओर संकेत करती है।

लेखिका का मानना है कि, जिस दिन जड़ संस्कारों की क़ब्र में निश्चेष्ट सोई हुई स्त्रियाँ अपनी नींद से जाग जायेंगी अर्थात् अपनी स्वतंत्रता और बंधनों को जानकर स्वतंत्र होने के लिए छटपटाने लगेंगी, उस दिन सही मायने में स्त्री का जन्म होगा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के धर्मध्वजधारी पुरुषों के लिए यह दिन क़यामत का दिन बन जाएगा। क्योंकि क़ब्र से जागी स्त्री उनसे अपने सवालों का जवाब माँगेगी और इस तरह सदियों से चली आ रही उनकी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो उठेगी। मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्री के प्रति जो बर्ताव किया जाता है, वह उसके व्यक्तित्व को किस तरह कुण्ठित बना देता है, इस तथ्य को सजगता के साथ उजागर किया है जया ने इस कहानी में।

परिवार, समाज और सामाजिक संस्थाओं के स्त्री विरोधी और पितृसत्तात्मक रवैये को कहानी की नायिका सुमिता अत्यंत सतर्कता के साथ देखती-परखती है। आश्चर्य की बात है कि व्यवस्था की जिस सड़ाध को सुमिता कुछ ही घण्टों में समझ जाती है, हमारा समाज और व्यवस्था उसे ही सामान्य मानकर चलते हैं। कैसा है यह समाज जिसमें एक स्त्री एक दिन भी बिना किसी दबाब के अपनी मर्जी से नहीं जी सकती। घर में पति ने उसे सारी सुविधाएँ दी हैं– उसकी 24 घण्टे मुफ्त सेवाओं के बदले। उसके लिए एक कार भी है लेकिन चाभी पति के पास रहती है। इस तरह, उसकी स्वतंत्रता और अस्मिता का कोई सवाल ही नहीं उठता इस माहौल में।

एक सुबह जब वह 'नंगे सिर और रात के कपड़ों में' ही अगड़ाई लेती हुई लॉन में आ जाती है, जहाँ पति समेत घर के अन्य लोग बैठे चाय पी रहे हैं, तो उसे इस रूप में देखकर मानो उन पर गाज़ गिर पड़ती है। पति गुस्से, क्रोध और

भय से तमतमाता हुआ उसकी ओर बढ़ता है, "ये किस तरह मुमकिन था कि उनके अँगूठे के नीचे से फिसलकर एकाएक मेरा पूरा कद निकल आए और वे चुप बैठे रहें।"[21] और जब वह पति को धक्का देकर अचानक भाग गई तो बाहर उसने उस एक दिन में जो कुछ देखा-भोगा, वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति का दिल दहलाने के लिए काफी है। चाय की दुकान पर खड़े हुए लोग, मोची, डॉक्टर- हर किसी के लिए वह केवल एक देह है, जिसे नोचने के लिए सब भेड़िए की तरह घात लगाए हुए हैं। अगर एक औरत अकेले इस तरह घूम रही है तो सारे लोग उससे अपने हिसाब से जैसे चाहें वैसे पेश आ सकते हैं। पचास, सौ रुपये कीमत देकर रात भर की पेशकश करने वालों की भी कमी नहीं है। मान गई तो ठीक, नहीं तो पुरुष उसे वेश्या का तमगा देकर खुद पाक-साफ बन जाएगा, "साली, रास्ते पर धंधा करती है, पटाती है, फिर टंटा करती है।"[22] कोई पूछे पुरुष से कि अगर वह सड़कों पर घूम सकता है, तो स्त्री क्यों नहीं। उसे किसने इजाज़त दे दी किसी भी औरत के बारे में बिना कुछ जाने-बूझे इस तरह बोलने की। चूँकि वह पुरुष है, इसलिए वह किसी भी स्त्री के बारे में कुछ भी बोल सकता है। घर रूपी पिंजड़े की कैद से एक दिन के लिए मुक्त होकर अपने मनमुताबिक जीने की इच्छा पालने वाली औरत बाहर आकर पाती है कि, "इस दुनिया को हमने अपनी हाथों इतना तबाह कर दिया है कि अब यह दुनिया इस काबिल नहीं रही कि यहाँ कोई मनुष्य बनकर एक दिन जी सके।"[23]

पूरी की पूरी व्यवस्था इस कदर सामंती संस्कारों की शिकार हो चुकी है कि यथास्थिति को ही सारे लोग सही मानकर ढोए चले जा रहे हैं। इस पूरी व्यवस्था पर सुमिता जैसी संवेदनशील स्त्री अत्यंत क्षुब्ध है। लेकिन इन सारी परिस्थितियों के बीच कुछ सकारात्मक चीजें भी सामने आती हैं। एक तो यह कि, चाय की दुकानों पर खड़े पुरुष हों, मोची हो, उसे धंधा करने वाली समझ कर छेड़-छाड़ करने वाला आदमी हो, या डॉक्टर हो वह किसी की भी ऊल-जलूल बातों या हरकतों से घबराकर रोने-धोने नहीं लगती। मोची द्वारा रात को बुलाने की पेशकश सुनकर वह

---

[21] जया जादवानी, कयामत का दिन उर्फ क़ब्र से बाहर, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से) पृष्ठ.9

[22] वही, पृष्ठ-9

[23] वही, पृष्ठ-9

हँस देती है– "मोची भी"। यह स्त्री में एक सकारात्मक बदलाव है, चूँकि वह जानती है कि पुरुष स्वयं भी जिस मानसिक गुलामी का शिकार है, वह औरत को इसी नज़र से देख सकता है। जब पति उसे पुलिस स्टेशन से लेने आता है तो, "उसके चेहरे पर घृणा और गुस्से की सर्द जमी चुप्पी थी, जिसमें कितनी उपेक्षाओं की पीड़ा और कितने नरकों का पानी जमा था। मुझे उस वक्त बहुत शिद्दत से अहसास हुआ– हम एक-दूसरे के लिए कभी कुछ नहीं हो सकते।"[24] लेकिन क्यों है घृणा और गुस्से की भावना? आखिर ऐसा क्या अपराध कर दिया 'सुमिता' ने यही न कि एक दिन अपनी मर्जी से जीना चाहा। जब एक दिन स्त्री अपनी इच्छा से बिना किसी चिन्ता, डर या दबाव के नहीं जी सकती तो परिवार और समाज में अपनी स्वतंत्रता की माँग करने वाली स्त्री की स्थिति को भलीभाँति समझा जा सकता है।

कहानी 'पलाश का फूल' में 'अपूर्वा' हमारे समाज की उस संवेदनशील, पढ़ी-लिखी और महत्त्वकांक्षी स्त्री की प्रतिनिधि है, जो चली आ रही मान्यताओं और पुरुष की जड़ मानसिकता से लोहा लेकर अपने 'स्व' को प्रमाणित करती है। ऐसा नहीं है कि उसे परिवार, पति या बच्चों की चाह नहीं है, लेकिन वह इन सबके साथ-साथ अपनी महत्त्वाकांक्षों और सपनों को भी जीना चाहती है। एक तो हमारे समाज में स्त्रियों की इच्छाओं और सपनों को कोई महत्त्व ही नहीं दिया जाता, दूसरे, तीन बच्चों के पिता-रोहित की दूसरी बीवी होने के कारण शादी के बाद रोहित के घर में हर कोई उसका तिरस्कार करता है। रोहित भी स्थितियों को समझकर उसे धैर्य बँधाने के बजाय उससे इन्हीं परिस्थितियों में ढल जाने की उम्मीद करता है। अपूर्वा तीन साल तक सब कुछ बर्दाश्त करने के बाद एक दिन रोहित से इस विषय में साफ-साफ बात करती है। रोहित उसकी पीड़ा, उसकी बेचैनी और उसकी आत्मसम्मान की भावना को समझने की कोशिश भी नहीं करता। वह नौकरी करना चाहती है– इस बात पर रोहित के भीतर का पौरुषीय अहंकार जाग उठता है। और अपूर्वा उसकी चुनौती को स्वीकार कर चल देती है– अपनी सार्थकता तलाशने। वह रोहित का शहर-इलाहाबाद भी छोड़ देती है। फिर नैनीताल आकर 'वर्किंग वूमन

---

[24] वही, पृष्ठ-9

हॉस्टल' में रहना और नौकरी की तलाश। पूरे दो साल बाद नौकरी और अतिरिक्त ट्यूशन के पैसों से वह अपना स्कूल खोल लेती है।

अपूर्वा अगर परिस्थितियों से लड़ने की हिम्मत जुटा सकी तो सिर्फ इसलिए क्योंकि 'उसने हारना नहीं जीना चाहा।' रोहित को लगा उसके और अपूर्वा के रिश्ते का कुछ नहीं हो सकता, लेकिन जब अपूर्वा नैनीताल से नौकरी मिलने की सूचना पत्र लिखकर देती है, तो वह खुद को रोक नहीं पाता। तब से इसी तरह वह कभी-कभी आता है उसके पास और दो-चार दिन रहकर चला जाता। लेकिन दोनों के बीच कुछ अनकहा रह जाता है– कुछ झिझक और संकोच। दरअसल स्त्री की बदली हुई भूमिका के कारण स्त्री-पुरुष संबंधों में आई जटिलता के कारण ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई हैं। पुरुष स्त्री की बदली हुई भूमिका को देखकर संभ्रम की स्थिति में है। आधुनिक स्त्री अपनी राह की सारी बाधाओं को समझकर उनसे निरपेक्ष भाव से निपटने की मुद्रा में खड़ी है। वह शिकायत-शिकवे की बजाय खुद अपनी सार्थकता तलाशने हेतु कटिबद्ध है, क्योंकि उसने परिस्थितियों के आर-पार देखने की दृष्टि अर्जित कर ली है।

'परिदृश्य' कहानी में माधवी जो अब तक सिर्फ एक साधारण घरेलू औरत थी और पति, घर, बच्चों से अलग उसकी कोई दुनिया ही नहीं थी, अब अपने बारे में भी सोचने लगी। उसे अपनी सामर्थ्य का भी पता है और पुरुष की जड़ मानसिकता का भी। इसीलिए, जब वह समझ जाती है कि पुरुष की मानसिकता बदलना अत्यंत दुष्कर कार्य है तो वह खुद को ही बदल लेती है। परिवार और विवाह संस्था की दम घोंटू जकड़न से अलग हो अब वह सिर्फ अपने लिए जीना चाहती है, कुछ सार्थक करना चाहती है जो उसे पहचान दिला सके।

माधवी में शनैः शनैः जो बदलाव आया है वह हर पढ़ी-लिखी संवेदनशील स्त्री को अपनी स्थिति और भूमिका के बारे में सोचने को मजबूर करता है। पति का उसे ताने देना, दूसरी महिलाओं से हमेशा उसकी तुलना करना, उसे हीन साबित करना– यह सब कुछ उसे अपने बारे में सोचने को मजबूर करता है। और वह अपने को बदलकर दिखा देती है लेकिन पति को उसके बदले हुए 'बोल्ड' रूप से भी परेशानी है। उसे शायद खुद नहीं पता कि वह चाहता क्या है। जब वह अपने लिए नौकरी तलाश लेती है तो वह उसे रहने का बंदोबस्त कर लेने की भी चुनौती

देता है। उसे लगता है कि अब तो वह टूट ही जाएगी लेकिन माधवी उसकी यह चुनौती भी स्वीकार कर लेती है और घर (परिवार संस्था) की हकीकत भी दो टूक शब्दों में बता देती है कि "... यहाँ सिर्फ हारी हुई औरतें पनाह लेती हैं क्योंकि फिर वे इसके सिवा जाएँगी कहाँ।"[25] कहानी मध्यमवर्गीय परिवारों में दिन-रात घुटती औरतों की हकीकत को बहुत ही मार्मिक ढंग से बयान करती है।

"भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों में जिस दमघोंटू और संहारक परिवेश ने स्त्री के व्यक्तित्व को आक्रान्त किया हुआ है, उसे लेखिका ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत भर कर देती है और वह सब लोमहर्षक कथा-विवरण बन जाता है। ऐसा नहीं है कि पुरुष जाति के प्रति यहाँ केवल घृणा है और स्त्री केवल जीवन के विद्रूपित पक्ष का ही प्रतिनिधित्व करती है। दरअसल, स्त्री जीवन का यह सारा वृतान्त सार्थकता की खोज करता है। यह सिलसिला कई ऐसे प्रश्नों को उपजाता है, जिन्हें पुरुष को ही हल करना है, क्योंकि यह संकट और समस्याएँ स्त्री जीवन में पुरुष के साहचर्य ने पैदा की हैं।"[26]

स्त्री पर पुरुष सदैव अपना एकाधिकार समझता आया है। उसे इस बात की कोई परवाह नहीं कि इससे स्त्री के मन-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है। 'झर चुकने के बाद' ('मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह से) और 'एक लम्हें में' ('अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है' संग्रह से) कहानियाँ पुरुष की इसी मानसिकता से स्त्री जीवन में उपजी समस्याओं को अलग-अलग ढंग से उठाती हैं। 'झर चुकने के बाद' कहानी की नायिका एक वेश्या की लड़की है जिसे एक लठैत पुरुष चोरी से उठा लाया है। पुरुष की यह क्रूरता इस स्त्री के मन पर इतनी गहरी चोट पहुँचाती है कि एक जीती -जागती लड़की एक ज़िन्दा लाश बन जाती है। जबकि 'एक लम्हें में' कहानी के माध्यम से प्रेम में असफल प्रेमी की हिंसक भावना और उससे उपजी स्थितियों को दर्शाया गया है। पुरुष को अगर कोई स्त्री पसंद आ जाए तो वह उसे किसी भी सूरत में हासिल करना चाहता है, बिना यह जाने कि वह स्त्री क्या चाहती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पुरुष के लिए स्त्री एक वस्तु है।

---

[25] जया जादवानी, परिदृश्य, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से) पृष्ठ.59
[26] सुमीता कुकरेती, अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है (कहानी संग्रह से) पुस्तक के फ्लैप पर उद्धृत वक्तव्य।

इसीलिए असफल प्रेमियों द्वारा आए दिन प्रेमिकाओं की हत्या या उन पर तेज़ाब फेंकने जैसी घटनाएँ सामने आती रहती हैं।

इस कहानी में, भी यह पता चलने के बाद कि वह लड़की किसी दूसरे पुरुष से प्रेम करती है, वह (पुरुष) हार जाने के अहसास से इतना हताश होता है कि प्रेम प्रतिशोध में बदल जाता है। वह जानबूझ कर जीप को खाईं में गिरा देता है। उसकी खुद की टाँगे कट गईं, लेकिन उसे इस बात का ज्यादा संतोष है कि लड़की जिससे प्रेम करती थी, वह मर गया। सवाल यह उठता है कि, इससे उसे क्या मिला–सिर्फ़ उसके भीतर का पौरुषीय अहं' शांत हो गया। क्यों वह इस बात को नहीं समझ सका कि प्रेम को बाँधा नहीं जा सकता या जबर्दस्ती थोंपा नहीं जा सकता। यह है स्त्री के प्रति पुरुष समाज की मानसिकता जो उसे अपने समान ही मनुष्य मानने के बजाय उसे सिर्फ एक 'वस्तु' के रूप में देखती है।

जया जादवानी मनुष्य के वास्तविक धर्म और मुक्ति का सवाल अत्यंत गंभीर दार्शनिक चिन्तन के माध्यम से उठाती हैं। 'मुक्ति', 'फिर-फिर लौटेगा', और 'जो नहीं है, वह' (अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है') कहानियाँ समाज में धर्म के नाम पर फैले पाखण्ड और समाज विमुख आत्मकेन्द्रिकता को स्पष्ट करती हैं। जीवन की नैसर्गिक क्रियाओं से भागकर मनुष्य न जाने किस मुक्ति की तलाश में धर्माश्रमों ओर 'ट्रस्टों' में पड़ा अपना जीवन नष्ट कर रहा है। "सारी जिन्दगी अपने को मारने के बाद इन्हें किस मोक्ष की तलाश है? ये क्या कोई जिम्मेदारी महसूस नहीं समझते? अपने प्रति, परिवार – समाज–देश के प्रति।"[27] इन प्रश्नों से भीतर-भीतर जूझती कथानायिका मनु इसी समाज की व्यवस्था की मारी है। वह किससे माँगे अपने सवालों के जवाब? कौन उसे व्यवस्था के बंधनों से मुक्त करके एक मनुष्य के रूप में स्वाभाविक जीवन की ओर ले जाएगा।

जया जादवानी दार्शनिक प्रत्ययों के सहारे मनुष्य मन की गहन पड़ताल करती हैं और अत्यंत मूल्यवान अनुभव लेकर लौटती हैं। "जानो किस महत् उद्देश्य के तहत जन्म हुआ है तुम्हारा। तुम ईश्वर हो स्वयं। अपने ईश्वरत्व को पहचानो।

---

[27] जया जादवानी, 'मुक्ति', अंदर के पानियों में कोई सपना क़ाँपता है' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-38

इसे बाहर मत जानो। यह भीतर है–तुम्हीं हो स्वयं। इसे महसूस करो।"[28] लेकिन अफसोस, कि 'तरुण' इस मर्म को संसार से बाहर, अपने से बाहर वन, कंदराओं में खोज रहा है। कथानायिका 'तनु' इस मर्म को जानती है, उसके लिए अपनी जिम्मेदारियाँ निभाना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, इसीलिए उसके सामने कभी असमंजस की स्थिति नहीं आई।

जया जादवानी के यहाँ जीवन को सरल, सुखद बनाने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों का सहयोग अपेक्षित है। वह पुरुष की कठिनाइयों को भी समझती हैं। इसीलिए तो अपने आपको थहा लेने के बाद उनकी कथानायिकाएँ एक उदात्त जीवन को रचने की ओर उन्मुख होती हैं। 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' कहानी को पढ़ते हुए इसी संयत स्त्री से साक्षात्कार होता है जो पति (विकी) के चले जाने से नाराज़ नहीं होती क्योंकि वह उसकी कमजोरी ओर मजबूरी दोनों समझती है। अपनी ही प्रतिकृति, अपनी बेटी को जन्म देकर वह मुस्करा उठती है –गर्व से, कृतज्ञता से "मैं समूची सृष्टि के प्रति कृतज्ञ...।"[29]

इस प्रकार, जया जादवानी की कथानायिकाएँ आत्मसाक्षात्कार की कठिन प्रक्रिया से गुजर कर ही अपना आत्मविस्तार करती हैं। उनकी मुक्ति सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति की वाहक बनती है...

---

[28] जया जादवानी, 'फिर.फिर लौटेगा', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है', (कहानी संग्रह से) पृष्ठ-99

[29] जया जादवानी, 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है', इसी शीर्षक संग्रह से, पृष्ठ-126

3.2 मुक्तिकामी स्वरों की अहमियत

आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से आत्मविस्तार की दिशा में आगे बढ़ने वाली जया जादवानी की कथानायिकाएँ–चूँकि सबकुछ को अत्यंत पारदर्शिता के साथ देखती परखती हैं, अतः वे यथार्थ की विद्रूपता से झुझलाती नहीं हैं। वे स्वयं जागकर 'अन्यों' को जगाने हेतु आगे बढ़ती हैं। 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियाँ हर स्त्री को अपने आपको पहचानने की दृष्टि देती हैं तो 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' की कहानियाँ समाज की विद्रूपताओं से निपटने का साहस। यहाँ न अपने प्रति हीन भावना है न पुरुष के प्रति घृणा। यहाँ तो बस, अपने को पुनर्संयोजित कर 'स्व' एवं समाज के सृजन की चिन्ता है। कहानियों में चित्रित स्त्री हमारे समय और समाज की स्त्री है, जो अपने अनुभवों को अपने बयान के रूप में दर्ज कराती है।

"'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों में अपनी तलस्पर्शी दार्शनिक ऊँचाइयों के साथ वे देख सकी हैं कि पितृसत्ता के ऊचे पायदान पर निपट अकेला खड़ा पुरुष कितना असुक्षित और बेचारा है। श्रेष्ठता दम्भ के अतिरिक्त उसके पास कोई संवेदना नहीं कि उद्दाम वेग से बहते जीवन को वह अपने अंदर-बाहर महसूस कर सके।"[30] इसीलिए जया जादवानी स्त्री को अपने भीतर से समर्थ बनने की प्रेरणा देती हैं। वह अह्वान करती हैं "अपनी-अपनी कब्रों में सोई स्त्रियों के जाग जाने का, आत्मपीड़ा और आत्मदया जैसे आरोपित स्त्रियोचित गुणों की चादर उतार फेंक कर सचमुच जिंदगी जीने का जहाँ जीने के नाम पर जीने की एक्टिंग का सख्त निषेध है।"[31] लेखिका स्त्री के जीवन में इसी क्षण की कामना करती है जब वह अपने 'स्व' को पहचान जाएगी, इस क्षण उसका नया जन्म होगा। अपनी 'अदना-सी हस्ती' के साथ सिर्फ एक दिन में पूरे शहर में हंगामा खड़ा कर देने वाली सुमिता नागपाल अपनी "उम्र पाँच घण्टे, बत्तीस मिनट, सत्ताइस सेंकेण्ड्स"[32] बताती है, क्योंकि इतने समय पहले ही उसने खुद को पहचाना है। इसीलिए वह

---

[30] रोहिणी अग्रवाल, अंदर के उज़ाले और सिर्फ़, हंस, दिसम्बर 2002', पृष्ठ-90
[31] वही, पृष्ठ-90
[32] जया जादवानी 'कयामत का दिन उर्फ क़ब्र से बाहर' 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है; (कहानी.संग्रह से), पृष्ठ-4

कहती हैं कि "आज ही तो तय किया है मैंने कि एक्टिंग नहीं करूँगी।"[33] अपनी जाग्रत अन्तदृष्टि से सुमिता समाज, व्यवस्था और संबंधों की उस सड़न को देख पाती है कि, "यह दुनिया इस क़ाबिल नहीं रही कि कोई यहाँ मनुष्य बन कर एक दिन जी सके।"[34] यही सुमिता अपने आप को थहा कर, भीतर से मजबूत बनकर उभरती है कहानी, 'पलाश का फूल' की अपूर्वा और कहानी परिदृश्य की माधवी बनकर। सामान्य एवं खुशहाल जीवन जीने की आकांक्षा लिए अपूर्वा तीन साल तक इंतजार करने के बाद अपनी सार्थकता की तलाश में पति रोहित और उसके बच्चों को छोड़कर नैनीताल चली आती है। लम्बे मानसिक द्वन्द्व के बाद वह सोचती है कि क्यों लचीलेपन के नाम पर वही स्वाहा होती रहे, "किसी के लिए वह कुछ क्यों छोड़े? उसके लिए क्या छोड़ा है किसी ने?"[35] और अन्ततः पति के अहं को बचाने में स्वयं को कुर्बान करने के बजाय नैनीताल जाकर 'सर्द, असुरक्षित और अकेली' जिन्दगी का चुनाव करती है। जिन्दगी से लाख शिकायतों के बावजूद उसे अपने चुनाव का पूर्ण संतोष है। इसी तरह एक सामान्य घरेलू औरत 'मिसेज गोयल' से माधवी बनकर और डांस, ड्रिक, पार्टी 'कल्चर' का हिस्सा होकर भी अपनी सार्थक पहचान बनाना नहीं भूलती क्योंकि क्योंकि उसने धीरे-धीरे अत्यंत धैर्य के साथ अपने व्यक्तित्व को विकसित किया है।

"वह स्त्री जो यह समझ जाती है कि हज़ारों महीन तारों में उसे प्रशांति और प्रेम के छद्म के पीछे असमर्थता और घृणा की अभिवृत्तियों में जकड़ा हुआ है, उसके सामने अगर उसे पूरी तरह भ्रष्ट नहीं हो जाना और बुझ नहीं जाना है तो भाग निकलने के अलावा कोई चारा नहीं है। स्वतंत्रता बेहद डराने वाली है, लेकिन अहलादक भी है। चैतन्य की अपनी यात्रा पर निकल पड़ी 'नोराओं' के लिए जीवन ज्यादा आसान या सुखद नहीं होता, लेकिन ज्यादा रोचक बल्कि उदात्त जरूर होता है।"[36]

---

[33] वही, पृष्ठ-5
[34] वही, पृष्ठ-9
[35] जया जादवानी 'पलाश का फूल' अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, (कहानी संग्रह से), पृ.16
[36] जर्मेन ग्रीयर, बधिया स्त्री (अनु. मधु बी. जोशी), पृ.20

इससे पहले 'शाम की धूप में' यही स्त्री सिर्फ रोती-बिसूरती रह जाती है तो 'वहाँ मैं हूँ' में अपने आप को पहचान कर भी 'माधवी' की तरह मुठभेड़ करके आगे नहीं बढ़ पाती।

आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया,जो कि 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों की मुख्य विशेषता है, से गुजर कर अब वह अपने से बाहर-समाज में अपनी सार्थकता की तलाश कर रही है। वह लड़की जो आसमान की ऊँचाइयों के भीतर कैद अपने स्वप्नों से साक्षात्कार करके कटु यथार्थ के समक्ष ठिठकी खड़ी थी और जिसने एक कदम आगे बढ़कर 'तीसरा कक्ष' कहानी में अपनी क्षमता और जड़ संस्कारों की कमजोरी को पहचाना था, वही 'अंदर के पानियों में काँपते' स्वप्न को साकार करके गर्वोन्नत है। यह स्त्री अपने 'स्व' और अपने समय, समाज तथा संस्कृति के प्रति पूर्णतया जागरुक है। वह अपने भीतर की दबी चिंगारियों को चुनकर अपने को संयोजित करती है।

"बहुत तकलीफ़देह होती है आत्मान्वेषण की ऊर्ध्व यात्रा। अपने आप को पहचान कर प्रकृति और सृष्टि, व्यक्ति और समाज के साथ अपने संबंध और प्रयोजन को, होने और सार्थक हो सकने के बीच पसरे तमाम द्वन्द्वों संघर्षों, संकटों तक की अन्तर्यात्रा जिसके एक छोर पर है राग तो दूसरे पर विराग; एक ओर है व्याकुल शून्य तो दूसरी ओर अनन्त-अकूत आह्लाद।"[37] यह कोरी दार्शनिक बकवास नहीं है, वरन् अपने भीतर छिपे उज़ालों से व्यक्ति के साक्षात्कार की जटिल प्रक्रिया है। बाह्य परिस्थितियों के दबाव में भले ही कह पाने में समर्थ न हो, लेकिन आधुनिक स्त्री अपने भीतर के कोनों में पैठ कर, अन्तद्वन्द्वों की आँच में पिघलकर सम्पूर्ण व्यवस्था और उसमें अपनी भूमिका को अत्यंत सजग ढंग से विश्लेषित करती है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, ज्ञान के प्रसार ने आधुनिक स्त्री को जो संवेदनशील अन्तर्दृष्टि प्रदान की है, वह उसका सकारात्मक इस्तेमाल कर रही है। वह 'आत्मदया' और 'आत्मपीड़ा' की स्थितियों से उबर चुकी है क्योंकि उसके पास अकेले जीने का विकल्प है। आज स्त्री के इस तरह के निर्णय चौंकाते नहीं क्योंकि

---

[37] रोहिणी अग्रवाल, 'अंदर के उज़ाले और सिर्फ़ सवाल', हंस, दिसम्बर 2002, पृ.89

वह अपने अस्तित्व की सार्थकता तलाशने की दिशा में किसी भी बाधा का डटकर सामना करती है। जागरुक स्त्री सम्पूर्ण व्यवस्था पर विचार करके इसकी एक-एक इकाई का रेशा-रेशा खोलकर देख लेती है। ऐसा करके वह जान गई है कि 'अंधेरा-अंधेरा' चिल्लाने से बेहतर है रोशनी की व्यवस्था करना।

पहले वह क्षमता और न्यायपूर्ण व्यवस्था के अभाव में कुछ भी कहने से बेहतर समझती थी चुप रहना। "वह जानती है, शब्दों की कोई कीमत नहीं देह के बाजार में, उसके शब्द कभी उसकी देह नहीं बचा पाए।"[38] लेकिन अब वह निस्सहाय नहीं है। वह 'राने-कलपने' और 'चुप रहने' से अलग अपनी क्षमताओं का विस्तार करती है। ठीक उसी तरह, जैसे एक रेखा को छोटा करना हो तो उसे काटने-पीटने से बेहतर है उसके समानान्तर उससे बड़ी रेखा खींच देना। वह पुरुष की मानसिक जकड़न और 'निपट अकेलेपन' के कारण उपजे असुरक्षा बोध को भलीभाँति समझ चुकी है। इसीलिए पुरुष का अहं अब उसे आतंकित नहीं करता। वह खुद को अधिक सामर्थ्यवान बनाकर अपनी सार्थकता सिद्ध करने की दिशा में आगे बढ़ रही है। अपने व्यक्तित्व-निर्माण की इस ऊर्ध्व यात्रा को अत्यंत धैर्य के साथ तय कर रही है।

सातवें, आठवें और किसी हद तक नौवें दशक के प्रायः सतही, उग्र और लक्ष्यहीन स्त्री लेखन के विपरीत जया जादवानी अपनी कथानायिकाओं के भीतर उतरकर उसे टूट-टूटकर बनते हुए देखती हैं। इसीलिए उनकी कहानियों में सजग, संवेदनशील स्त्री 'मुक्ति' की तलाश में भीतर ही भीतर, "अंधेरों में प्रेत-सी भटकती"[39] रहती है। इन अंधेरों में लम्बी भटकन के बाद ही वह आसमान की निस्सीम ऊँचाइयों में उड़ने का साहस और सामर्थ्य संजो पाई है। "एक बार उड़ना सीख लेने के बाद तो फिर पूरा आसमान है उसके लिए।"[40]

आधुनिक स्त्री अपने लिए आज स्वयं चुनाव करने लगी है। संस्कारों के धागों की कमजोरी तो वह पहले ही जान चुकी थी। अब वह एक ही झटके में उन्हें तोड़कर आगे निकल रही है। जो समाज स्त्री को सोचने की भी छूट नहीं देता था,

---

[38] जया जादवानी, 'झर चुकने के बाद', मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से), पृ.40
[39] जया जादवानी, 'मुक्ति', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी संग्रह से), पृ.39
[40] जया जादवानी, 'परिदृश्य', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी संग्रह से) पृ.58

उसी समाज में स्त्री ने अपने हकों को लम्बे संघर्ष के बाद पाया है। वह न तो पुरुष हो जाना चाहती है और न ही अपने लिए अलग दुनिया लेना चाहती है। वह इसी दुनिया में अपने मनुष्य होने के सारे हकों को पाने के लिए संघर्ष कर रही है। चूँकि, पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को अनेक स्तरों पर संगठित रूप से जकड़ रखा है, अतः अपने हक की लड़ाई के लिए उसके हथियार भी नए होने चाहिए और रणनीति की।

इसीलिए, जया जादवानी की कहानियों में स्त्री किसी भी 'शॉर्टकट' का इस्तेमाल नहीं करती। वह अपने लिए लम्बे, ऊबड़-खाबड़ किन्तु स्थायी मुक्ति प्रदान करने वाले रास्ते चुनती है। यह सजग स्त्री अपने आस-पास की स्थितियों को भी अत्यंत सजग दृष्टि से जाँचती है। कहानी 'कयामत का दिन उर्फ़ क़ब्र से बाहर' स्त्री की इसी दृष्टि को उजागर करती है। जहाँ एक दिन बिना किसी डर, संकोच, दबाब और जिम्मेदारी के अपनी मर्जी से जीने निकली सुमिता परिवार, समाज और उसके पहरेदारों के लिए चिन्ता का विषय बन जाती है। चाय की दुकान पर, सड़कों पर, अस्पताल, जेल और स्कूलों में हर जगह उसे मनुष्य के दमन के लक्षण नजर आते हैं। रास्ते में उसकी नज़र 'थियएटर' के 'बोर्ड' पर पड़ती है– 'साजन बिना सुहागन'। 'फिल्म' देखरने के लिए औरतें सबसे ज्यादा उत्सुक हैं। अपनी कब्रों में सोई इन औरतों पर सुमिता को तरस आता है। सुमिता ही अपने भीतर से और अधिक मजबूत होकर धर्म के नाम पर फल-फूल रहे आश्रमों, ट्रस्टों और बाबा-महंतों से जवाब-तलब करती है, कहानी 'मुक्ति' में।

आत्मविश्वास से भरी यह जागरुक स्त्री कथानायिका मनु के साथ-साथ उसकी माँ को भी खरी-खोटी सुनाती है। जीवन जीने के लिए है। उसके संघर्षों से भाग कर किस अनजानी, अदृश्य मुक्ति की तलाश में लोग आश्रमों, ट्रस्टों में पड़े रहते हैं। न अपनी खबर न देश-दुनिया की। उसकी बातों का ही असर है कि मनु की माँ एक रात मनु को अपनी जिन्दगी चुनने के लिए आश्रम से भाग जाने को कहती है "तू भाग जा, कहीं भी.. चाहे कुछ न होगा अब, पर यह तो होगा कि तू

कुछ घड़ियाँ अपने मन की जी लेगी...जा...जा...उठ जल्दी... अपनी माँ का किया माफ कर...।"[41] और मनु मुक्ति की यात्रा पर निकल पड़ती है।

जया जादवानी अपनी कहानियों के माध्यम से लगातार ऐसे सार्थक सवाल खड़े करती हैं जिनके जवाब स्त्री और पुरुष को मिलकर ढूढ़ने होंगे। गहरी समझ बूझ और सहभागिता के बिना किसी की भी मुक्ति सम्भव नहीं है। ये कहानियाँ मनुष्य के अधिकारों और सरोकारों को अभिव्यक्त करती हैं। जो कुछ भी मनुष्य के सहज, स्वाभाविक और स्वतंत्र विकास में बाधक है, जया जादवानी उसे सवालों के घेरे में लाती हैं।

जया जादवानी की कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री ही नहीं वरन् मनुष्य मात्र के सहज विकास को बाधित करती है। अतः लेखिका उसके हर रूप को उजागर करती है। 'जो नहीं है, वह' कहानी में सामंती संस्कारों की जकड़न में कैद स्त्री अपने प्रेम को समाज के सामने नहीं स्वीकार पाती। वह प्रेमी पुरुष को ही बलात्कारी कहकर समाज के सामने अपने को पाक-साफ बचा लेती है। अन्त में, जब फाँसी की सजा पाने वाले उस लड़के का भाई गुरुद्वारे में लड़की से पूछता है कि सच क्या है, तो वह उससे नजरें नहीं मिला पाती। अपने घर वालों के पूछने पर कहती है, "मुझे छेड़ रहा था।"[42] जया जादवानी सवाल खड़ा करती हैं कि कब तक, "गर्म की जाती रहेंगी तेल की कड़ाहियाँ – उस सच को जानने के लिए जिसके खिलाफ समूची सृष्टि खड़ी है।"[43] सवाल और भी हैं –क्यों नहीं स्वीकार पाती लड़की अपने प्रेम को? और इसका उत्तर छिपा है–कहानी 'जब वह होता है' में। चूँकि, समाज के नियंताओं को प्रेम की ताकत से डर लगता है, अतः वे संसार को अपने अनुसार चलाने के लिए इसे प्रेमविहीन कर देना चाहते हैं। "प्रेम उपद्रव करता है। सृष्टि की सारी व्यवस्थाएँ गड़बड़ा जाती हैं।"[44] लेकिन कौन तय करेगा कि सही क्या है और गलत क्या।

---

[41] जया जादवानी, 'मुक्ति', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-42
[42] जया जादवानी, 'जो नहीं है, वह', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है।' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-140
[43] वही, पृष्ठ-140
[44] जया जादवानी, 'जब वह होता है', 'मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-62

'जो नहीं है, वह' की स्त्री के विपरीत 'जब वह होता है' की स्त्री अपने 'स्व' के प्रति जागरुक है, वह प्रेम के लिए सारी बाधाओं से लड़ने को तत्पर है। कहानी 'इसे ऐसा ही होने दो' प्रेम के एक अन्य रूप को उजागर करती है। प्रेम तो कभी भी, कहीं भी और किसी से भी हो सकता है, लेकिन समाज इसकी इजाजत नहीं देता किसी को। एक बार स्वीकारने तक की इजाजत नहीं। इसीलिए प्रोफेसर शिरीन से कहते हैं, "लेट इट बी सो..."[45]

एक स्त्री क्यों भागीदार बनती है कन्य भ्रूण हत्या में? इस प्रश्न को उठाया गया है कहानी 'मैं मनुष्य हूँ' में। गर्भ के भीतर पल रहे शिशु के भी अधिकार उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि समाज में रह रहे मनुष्यों के। वह भी एक मनुष्य है। लेकिन उसे जन्म लेने की इजाजत नहीं दी जाती—अगर वह लड़की है। यहाँ माँ तथाकथित आधुनिक है। शराब, सिगरेट और डांस पार्टियों की संस्कृति में रहने वाली यह तथाकथित आधुनिक माँ पितृसत्तात्मक संस्कारों की कब्र में सोई हुई है। इससे कहीं अधिक सजग और जागरुक है, 'रुपान्तरण' कहानी की रामकली जो बच्चे को पैदा करने के बाद अपने को उससे जोड़कर देखती है। अपने सृजन को वह छेदी को देना नहीं चाहती। वह धोखेबाज भी नहीं है। 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' कहानी को पढ़ लेने के बाद तो शायद हर स्त्री बेटी की माँ जरूर बनना चाहेगी। नायिका को गर्व है अपनी ही प्रतिकृति को साकार रूप में देखकर। उसे बेटा-या बेटी से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वह तो अपनी सृजनात्मकता के लिए समस्त' सृष्टि के प्रति कृतज्ञ' है।

कहने का तात्पर्य है कि, जया जादवानी की कहानियों की नायिकाएँ ऐसी सजग स्त्रियाँ हैं जो मनुष्य की गरिमा और अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। अपनी सार्थकता की तलाश में वह दूसरों के प्रति अन्याय नहीं होने देती हैं। ये क़हानियाँ स्त्री को अपने बारे में सोचने और अपनी साथर्कता तलाशने के लिए मजबूर करती हैं। अपने साथ-साथ सम्पूर्ण समाज को संतुलित और सार्थक बनाने की प्रक्रिया में ये स्त्रियाँ सड़े-गले संस्कारों को अत्यंत सहज ढंग से पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाती हैं।

---

[45] जया जादवानी, इसे ऐसा ही होने दो, 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है', (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-178

जाहिर है कि, एक की जाग्रति धीरे-धीरे दूसरों में भी जाग्रति की चेतना जगाती है। इस दृष्टि से ये कहानियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मुक्ति की चाह रखने वाली स्त्रियों के लिए जया जादवानी की कहानियाँ पथ-प्रदर्शक का काम कर सकती हैं। जीवन-संघर्षों से उबरने की प्रेरणा इन कहानियों की मूल चेतना है। आज की स्त्री जो कभी-कभी यौन स्वच्छंदता और बाहरी चमक-दमक का हिस्सा बनने में ही अपनी मुक्ति समझती है, उसके लिए ये कहानियाँ सही राह दिखाने का कार्य कर सकती हैं। सबसे जरूरी है आत्मसाक्षात्कार और फिर सार्थक दिशा में विकास। जागरुकता और चेतना ही स्त्री को वास्तविक मुक्ति की दिशा में ले जा सकती है, जहाँ से फिर वह दूसरों की मुक्ति की वाहक बन सकेगी।

आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को अत्यंत सधे ढंग से बयान करती हैं 'मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह की कहानियाँ। समस्या के मूल कारणों की खोज में स्त्री अपने भीतर गहरे उतरती है। वह अपने आप से साक्षात्कार करके अपने व्यक्तित्व को भीतर से दृढ़तर बनाती जाती है और 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' की कहानियों तक आते-आते अपने व्यक्तित्व और अपने समय, समाज और संस्कृति के सार्थक विकास हेतु मज़बूती से आगे बढ़ती है। ये कहानियाँ प्रत्येक जागरुक स्त्री को समाज में अपनी भूमिका को जाँचने के साथ-साथ उदात्त मानवीय मूल्यों की ओर अग्रसर करती हैं। कहानियों के माध्यम से लेखिका बेचैन करने वाले कुछ ऐसे सार्थक सवालों को उठाती हैं, जिनके उत्तर खोजे बिना एक संतुलित व्यक्तित्व एवं स्वस्थ्य परिवार, समाज या रिश्तों की बुनियाद नहीं रखी जा सकती।

3.3 कहानियों का भाषागत वैशिष्ट्य

"स्त्री देह के रूप में स्त्री का अनुभव करना, पुरुष के रूप में अनुभव करने से भिन्न अनुभव करना होता है। किसी कृति को स्त्री की तरह पढ़ना भी एक अलग पहचान बनाना है। स्त्रीत्ववाद स्त्री के इन्हीं एकान्तिक अनुभवों को पुल्लिंगी भाषा से भिन्न भाषा में अभिव्यक्ति का पैरोकार हैं अब तक की उपलब्ध भाषा पुरुष की भाषा है जिसमें स्त्री की तरह सोचा या अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।"[46]

जया जादवानी अपनी कहानियों में संवेदनाओं की तरलता के अनुसार ही भाषा का इस्तेमाल करती हैं। सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ मनुष्य के भीतर की ऊहापोह लेखिका कुछ गिने-चुने (सीमित) शब्दों के माध्यम से इस तरह स्पष्ट करती हैं कि भाव और भाषा एक दूसरे के अनुगामी बन जाते हैं। 'मुझे ही होना है बार-बार' संग्रह की कहानियाँ स्त्री के मनुष्य-बोध को उजागर करती हैं। स्वयं से आत्मसाक्षात्कार की जटिल किन्तु 'ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया' के कारण इन कहानियों में विचारों की प्रधानता है। बाह्य-स्तर की अपेक्षा अन्तर्मन के स्तर पर द्वन्द्व, उथल-पुथल और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए जया जादवानी मुक्तिबोध की कविताओं की तरह भाषा का इस्तेमाल करती हैं। मनोविज्ञान की अध्येता होने के कारण वे स्त्री मन की उलझनों को अत्यंत सटीक शब्दों के माध्यम से उजागर करती हैं।

स्त्री-मन की चतुर चितेरी जया जादवानी भाषा को बिम्बों, अलंकारों और प्रतीकों से समृद्ध करती हैं। हमारी रोज़मर्रा की जानी-पहचानी जिंदगी में कुछ ऐसे पहलू अनदेखे रह जाते हैं जो हमारी संवेदना को भीतर-भीतर प्रभावित करते रहते हैं। जया जादवानी स्त्री-मन के कोनों में गहरे उतरकर उसके भीतर की दुनिया से साक्षात्कार करती हैं। जागरुक एवं संवेदनशील आधुनिक स्त्री अपने समय, समाज और संस्कृति के बीच अपनी भूमिका पर किस तरह विचार करती है, और समस्याओं का समाधान किस रूप में खोजती है, यही जया की कहानियों का भाष्य है। स्त्री की विविध छवियों को उभारने के लिए जया आवश्यकता परिवेश और भाषा का इस्तेमाल करती हैं।

---

[46] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, पृष्ठ–20

"जया मूलतः कवयित्री हैं, अतः राग और विचार को परस्पर अनुस्यूत कर वे कहानियों को जिस 'लिरिकल इफेक्ट' में ढालती हैं, वह कहानी समाप्त हो जाने के बाद भी गूँज के रूप में देर तक बना रहता है। इस खूबी के चलते उनकी कहानियाँ अलग-अलग पहचान खोकर अपनी लय-ताल में एक हो जाती हैं–एक और अखण्ड–ठीक उसी तरह जिस प्रकार इन्द्रधनुष के सातों रंग गति का स्पर्श पाते ही उजले प्रकाश पुंज में तब्दील हो जाते हैं।"[47]

जया जादवानी की कहानियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं। 'मुझे ही होना है बार-बार' की स्त्री जब आत्मसाक्षात्कार कर अपने भीतर की गहराइयों से बाहर आती है (भीतर से बाहर की ओर मुड़ने की प्रक्रिया) तो 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है', की कहानियों में अपने व्यक्तित्व की सार्थकता हेतु जीवन संघर्षों की राह पर आगे बढ़ती है। इस संग्रह में जया जादबानी 'मुझे ही होना है बार-बार' के विपरीत उस 'ठोस-स्थूल-सुपरिचित' संसार को रचती हैं जिससे लड़कर ही जीवन के सच को जाना जा सकता है। आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया में प्रकृति और उसके उपादानों का विशेष सहारा लिया गया है। क्योंकि प्रकृति अपनी सहजता और विस्तार के कारण लेखिका को रिझाती है। वह स्त्री और पुरुष को प्रकृति की भाँति सहज, सरल, विस्तृत और स्वतंत्र बनाना चाहती हैं।

'शाम की धूप में', 'झर चुकने के बाद', 'जब वह होता है', 'लड़की आसमान में', 'हिरण भाग रहा है' आदि कहानियों में मानव-मन की पर्तों को खोलने के लिए जया जादवानी प्राकृतिक दृश्यों का सहारा लेती हैं। जीवन के आखिरी छोर पर 'सेठ'– के आत्मविश्लेषण के बाद की स्थिति को कुछ इस तरह बयान करती हैं जया "शाम की धूप में सब-कुछ साफ-साफ चमक रहा है। एक-एक पत्ती-एक-एक टहनी-घास के तिनके-- उस पर चलते हुए अनजान कीड़े... ऊपर आसमान पर घर लौटते पंछी... शाम ऐसे ही उतरती है धीरे-धीरे... पहले पेड़ों की फुनगियों पर ... छतों पर .. तनों पर.. फिर धरती पर... धरती पर उतरते ही डूबने लगता है सब-कुछ।.. सुबह जो भुलावे देती है, शाम उसे आहिस्ता से वापस ले लेती है और आदमी के पास कुछ भी बाकी नहीं बचता... न रूप, न गंध, न नाम, न स्मृति, न

---

[47] रोहिणी अग्रवाल, अंदर के उजाले और सिर्फ सवाल, हंस, दिसम्बर, 2002, पृ.90

खालीपन... जैसे इस वक्त उनके पास भी नहीं है– कुछ भी नहीं है।"[48] 'झर चुकने के बाद' कहानी में किस्सागोई शैली का सफल प्रयोग किया गया है।

एक स्त्री, जिसे एक लठैत पुरुष जबरन उठा लाया है, अपने अपमान से किस कदर गहरे अवसाद में डूब जाती है। उसके अंदर के अंधेरों को स्पष्ट करने के लिए गहरी काली रात के वातावरण को चित्रित किया गया है, "सब कुछ अंधकार में डूबा हुआ है, सब कुछ ....। पेड़-पौधे... फूल–पत्तियाँ, लम्बी-लम्बी घास। उनके अपने अस्तित्व के खातिर लिपटे पड़े छोटे-छोटे जीव.. अबूझे.. अनजाने जीव... उन्हें हल्के-हल्के थपकती हवा... उस अंधकार से लिपटी सुगबुगाती- कुनमुनाती खामोशी..... सोने और जागने के बीच अनिश्चित-सी.... हल्की ठण्डक ने लिपटी और अंधकार में डूबा हुआ वह घर... कई बंद कमरों वाला.. बिल्कुल इन्सानी बजूद की तरह...।"[49]यहाँ हवा और बरगद एक-दूसरे को इस स्त्री के दुर्भाग्य की कहानी सुना रहे हैं।

बचपन की दहलीज पार कर जवान होती लड़की के सपने और उन्हें तोड़कर बिखराते पितृसत्तात्मक सामाजिक मूल्यों और संस्कारों को स्पष्ट करने के लिए जया जादवानी आसमान, तारे, पेड़, पत्तियों, मछलियों और पानी का सहारा लेती हैं। "आसमान फट गया है। उसकी जैसे ही सुबह आँख खुली और उसने देखा, उसकी छाती गहरे दुख से भर गई।"[50] पहले-पहल 'तारों से भरे आसमान' को अपनी आँखों में टाँगे फिरने वाली लड़की सामाजिक वर्जनाओं की कैद में चली गई। "फिर एक दिन तेज बारिश हुई.. इतनी तेज कि सब कुछ बह गया। आसमान का कोई रंग न दिखता... न सलेटी न नीला न मटमैला..।"[51] सपनों और यथार्थ में से किससे चुने यह लड़की। और 'तीसरे कक्ष' अर्थात् अपने अन्तर्मन में गहन चिन्तन-मनन के बाद वह पाती है कि उसकी इच्छा के बिना कोई भी उसके सपनों, इच्छाओं और स्वतंत्रता को कैद नहीं कर सकता। उसका मन जहाँ उसके सपनों, इच्छाओं और विचारों की लाश सड़ रही है, कीचड़-ही कीचड़ भर गया है, वहीं उसके आत्मसाक्षात्कार के कारण 'कमल के फूल' भी खिले हैं। वह अन्तर्मन की

---

[48] जया जादवानी, 'शाम की धूप में', 'मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से), पृ.25
[49] जया जादवानी, 'झर चुकने के बाद', 'मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-38
[50] जया जादवानी, 'लड़की आसमान में', 'मुझे ही होना है बार.बार (कहानी संग्रह से) पृ.32
[51] वही, पृष्ठ-32

गहराइयों में उतर रही है– सब कुछ पर गहन चिन्तन करके सार्थक विचारों की मणियों को लेकर ऊपर लौटने के लिए।

डांस, पार्टी, शराब, कबाब संस्कृति वाले मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों के बीच नष्ट होते प्रेम और इन सब के बीच घुटती स्त्री की स्थिति को दर्शाती है कहानी 'वहाँ मैं हूँ'। स्त्री पुरुष के संबंधों की नीरसता और जड़ता को लेखिका रेत के प्रतीक में व्यक्त करती है, "मैंने रेगिस्तान की तस्वीर देखी है, कितनी खूबसूरत लगती है रेत। जी चाहता है इसी में मुँह छिपा कर सो जाएँ। यह तो हमें बाद में पता चलता है – जब रेत नाक, मुँह, गले में भर जाती है, और हम रेत खाने लगते हैं, रेत थूकने लगते हैं, रेत जीने लगते हैं।"[52]

जीवन की जटिल परिस्थितियों और उनके बीच स्त्री की बहुस्तरीय लड़ाई को स्पष्ट करने के लिए जया 'फंतासी' का प्रयोग अपनी कहानियों में बहुतायत से करती हैं। स्त्री-मन की बेचैनी हो या अपने जीवन को स्वतंत्रतापूर्वक जीने की चाह फंतासी' के प्रयोग द्वारा जया जादवानी कहानियों में चमत्कारिकता ले आती हैं। 'मुझे ही होना है बार' शीर्षक कहानी की भाषा काव्यात्मक की ओर झुकी है। अपने भीतरी तल की यात्रा पर निकली स्त्री कुछ इस तरह अपने ही व्यक्तित्व के अनजाने पहलुओं से साक्षात्कार करती है– "मैंने उस समंदर में पहली डुबकी लगाई, जिसकी उत्ताल लहरें अपने भयंकर सम्मोहित रूप में हाथ उठा-उठाकर मुझे अपने पास बुला रही थीं। मैंने अपने चारों तरफ देखा था– कुछ भी ऐसा नहीं था जो मेरे पाँव की बेड़ी बन जाए... दूर-दूर तक फैली धूप में चटखी चट्टानें, जिसकी दरारों और निचली सतहों पर पानी जम जाने से काई उग आई थी।"[53]

विषय वस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग जया जादवानी की कहानियों को अधिक प्रभविष्णुता प्रदान करता है। समाज की जटिलता, विद्रूपता उसके संघर्षों को बयान करने के लिए लेखिका अपनी कहानियों में 'स्पेस' का अच्छा इस्तेमाल करती हैं। वह रिक्त स्थान छोड़कर एक ओर स्थितियों की गंभीरता को प्रकट करती हैं तो दूसरी ओर पाठक को विचार करने तथा व्याख्या के लिए अवकाश प्रदान करती हैं। आजकल 'ब्रांड संस्कृति' के जोर में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व दबता जा रहा है।

---

[52] जया जादवानी, 'वहाँ मैं हूँ', 'मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से) पृष्ठ-26
[53] जया जादवानी, 'मुझे ही होना है बार.बार', इसी शीर्षक संग्रह से, पृष्ठ-76

उसकी पहचान सिर्फ़ उसके ऊपर लगे 'लेबिल' से जानी जाती है। स्त्री की पहचान तो सिर्फ उसकी 'देह' है इसी से उसे हर कोई पहचानता है। लेकिन जागरुक स्त्री इस स्थिति को लेकर परेशान है। वह 'अंधेरों के बीच' अपने 'स्व' से परिचित हो चुकी है।

'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' संग्रह की कहानियों में स्त्री अपने आपको प्रमाणित करने के साथ-साथ अपने समय, समाज और संस्कृति के स्वस्थ्य विकास हेतु आगे बढ़ती है। कहानी 'कयामत का दिन उर्फ क़ब्र से बाहर' में वे फंतासी का सहारा लेकर व्यवस्था में फैली सड़ांध की उजागर करती हैं। 'पाँच घण्टे, बत्तीस मिनट और सत्ताईस' सेकेण्ड की सुमिता एक दिन अपनी इच्छा से जीवन जीने के लिए घर से बाहर भाग आती है लेकिन बाहर की दुनिया तो इतनी विषाक्त है कि यहाँ कोई एक दिन 'मनुष्य बनकर' नहीं जी सकता है। रोज़मर्रा की जिन्दगी में जो कुछ हमारे समाज में घटित होता रहता है, और जिसे हम सब सामान्य समझते रहते हैं, उसके भीतर की अमानवीयता और विद्रूपता को लेखिका जबर्दस्त कहानी का रूप दे देती है। जया कहानियों में परिवेश को इस तरह बुनती हैं कि कभी -कभी कहानियों में यह परिवेश ही केन्द्रीय चरित्र बनकर उभरता है।

'पलाश का फूल' और 'परिदृश्य' कहानियाँ अपने व्यक्तित्व को नए सिरे से गढ़ती स्त्री की छवि प्रस्तुत करती हैं। 'पलाश का फूल' कहानी में सुशिक्षित, जागरुक एवं महत्वाकांक्षी अपूर्वा रोहित के परिवार और उसके बच्चों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से भीतर तक आहत है। दूसरी ओर, घर में रहकर एक निरर्थक जिंदगी जीने के कारण वह भीतर-भीतर घुट रही है। उसके मन में इस स्थिति को लेकर भीषण-द्वन्द्व और ऊहापोह चल रहा है। संस्कारों के धागे उसे कितने दिन तक बाँधे रह सकते हैं। उसके मानसिक द्वन्द्व को लेखिका ने अत्यंत सटीक शब्दों में चित्रित किया है–

"इस घर की दरों-दीवारों से मुझे पराएपन की बू आती है ... मन भाग उठने को व्याकुल है... संस्कारों के धागों से जकड़ा हुआ। पर धागे तो धागे हैं, आखिर कितनी देर नहीं टूटेगे... जब टूटेगे क्या तुम रोक सकोगे? क्या कोई भी रोक सकेगा? मैं हवा हूँ... महानों की दीवारों से सिर पटकती। किवाड़ों की दरारों से भाग निकलने को आतुर..मैं तो सांस हूँ। तुम्हारने अन्दर और बाहर होती हुई...तुम बहुत

देर मुझे अपने में नहीं रख सकते, बाहर आना मेरी अनिवार्यता है... छोड़ना तुम्हारी नियति...।"[54] यहाँ एक पढ़ी लिखी संवेदनशील स्त्री की सार्थकता की तलाश को बयान करने में कथाकार जादवानी कवयित्री जादवानी का सहारा लेती हैं।

आवश्यकतानुसार, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा को समृद्ध करता है। सामाजिक बंधनों और स्वतंत्रचेता स्त्री की चिन्ताओं को 'स्पेस' के प्रयोग द्वारा अत्यंत रोमांचक ढंग से दिखाया गया है। 'फिर-फिर लौटेगा' और मुक्ति कहानियों में उनकी भाषा आवश्यकतानुसार सरल और गंभीर होती गई है, तो 'जो नहीं है, वह' कहानी में लोक भाषा का इस्तेमाल प्रचुर मात्रा में है। सिन्धी और पंजाबी भाषा की अच्छी जानकारी और गहन अनुभव लेखिका को इस तरह की कहानियों में अतिरिक्त सहायता पहुचाते हैं। लम्बे लम्बे वाक्यों को रचने में माहिर जया संवाद के समय छोटे-छोटे वाक्यों को भी उतनी ही कुशलता से रखती हैं।

'मुझे ही होना है बार-बार' की आत्मसाक्षात्कार परक कहानियों के अतिरिक्त 'परिदृश्य' और 'इसे ऐसा ही होने दो' तथा 'कयामत का दिन उर्फ क़ब्र से बाहर, आदि कहानियों में उनकी संवाद योजना कहानियों को एक अलग पहचान देती है। उनकी संवादशैली युक्त भाषा की बानगी देखिए– "सुनो खाना तैयार है।"

"हाँ"।

"पानी गरम रख दिया है बाथरुम में"।

"हाँ"।

"कमीज का बटन लगा दिया है"।

"हाँ"।

"प्रेस भी कर दी"।

"कर देती हूँ"।[55]

मध्यवर्गीय परिवारों में एक स्त्री की रोज़ानामचा की जिंदगी को अत्यंत सटीक ढंग से उजागर करती है यह भाषा।

---

[54] जया जादवानी, 'पलाश का फूल', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-18

[55] जया जादवानी, परिदृश्य, 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी-संग्रह से) पृ.53

खिलंदड़ापन उनकी भाषा की एक प्रमुख विशेषता है। स्त्री-मुक्ति की राहों की कठिनाइयों और उसकी मानसिक विश्लेषण की स्थिति को उजागर करने में जब कहानी बहुत गंभीर हो जाती है तो उसे अचानक एक नया मोड़ देती हैं जया और इस तरह कहानी पाठक को लगातार बाँधे रखती है। 'मुझे ही होना है बार-बार' की कहानियों की भाषा में खिलंदड़ेपन का प्रयोग कहानियों की विषयवस्तु के अनुसार खूब किया गया है। पुरुष से अलग प्रकार के सामाजीकरण द्वारा आदर्श स्त्री के निर्माण को स्पष्ट करती है–कहानी 'तीसरा कक्ष'। ये तीन कक्ष कहानी में तीन दृश्यों की तरह आते हैं। नाटकीयता इनकी कहानियों में भरपूर है। इन्हें सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटकीयता और खिलंदड़ेपन का सम्मिलित प्रयोग भी प्रायः किया गया है।

"मैंने अपना तमाम जीवन 'नासमझियों' में गुजारा है, पर अब चाहती हूँ कुछ जानूँ–वह क्या है जो ...। और मैं उसमें उतर गई... उतर कर उस पार चली गई... फिर वापस नहीं आई। और ये जो मैं बोल रही हूँ– अब छोड़िये न, सारे राज, जरूरी है, खोले जाएँ–और अब तुम ऊपर ही रहना, समझे? द्वार मैं तुम्हारे मुँह पर बंद करती हूँ।"[56]

भाषा का इस्तेमाल करते समय लेखिका परिवेश एवं पात्रों की वर्गीय स्थित आदि का पूरा ख्याल रखती हैं। 'रुपान्तरण' कहानी में 'रामकली' और 'छेदी' की भाषा में इसे देखा जा सकता है–

"'भेजा मत खा छेदी।' वह सब समझ गई– 'ऐसे ही किसी के घर बैठना होता तो किसी भड़वे का हाथ पकड़ लेती। अपनी मेहनत का खाती हूँ, हराम का नहीं।

'मेहनत का खाती है साली'। छेदी लाल ने उसे नफरत से देखा–

'जिस्म बेचती है और ....।'

'ऐ छेदी साले... तू क्या करता है? दूसरों का मांस बेचता है, मैं अपना बेचती हूँ। तुझसे तो अच्छी हूँ मैं। रह के तो दिखा औरत के बिना महीने भर, साला बात करता है।"[57]

---

[56] जया जादवानी, 'तीसरा कक्ष', 'मुझे ही होना है बार.बार' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-70
[57] जया जादवानी, 'रुपान्तरण', 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (कहानी संग्रह से), पृष्ठ-85

महिला रचनाकारों द्वारा इस तरह की भाषा के प्रयोग को प्रायः पुरुष आलोचकों ने साहित्य के सौन्दर्य–बोध के विरूद्ध माना है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूर है कि साहित्य के प्रचलित मानदण्डों पर स्त्री और दलित लेखन की भाषा को नहीं कसा जा सकता। स्त्री की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए समाज में उसके प्रति इस्तेमाल की जाने वाली भाषा को हू–ब–हू प्रयोग करना जरूरी हो जाता है। यह स्त्रीत्ववादी विमर्श के सौन्दर्य शास्त्र की निजी विशेषता भी है।

संक्षेप में, जया जादवानी अपनी कहानियों में भाषा का कुशल प्रयोग करती हैं। आवश्यकतानुसार आभिजात्य और औदात्य तथा लोकभाषा का इस्तेमाल कहानियों में किया गया है। रागात्मकता ज्यादातर कहानियों में प्रयुक्त है 'मैं मनुष्य हूँ', और 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' जैसी कहानियाँ एक अलग प्रकार की भाषा पेश करती हैं। स्त्री चरित्रों को स्पष्ट करने के लिए उनके अनुरूप स्त्री भाषा का प्रयोग कहानियों में परिलक्षित होता है। चूँकि जया जादवानी की कहानियाँ विशेष रूप से पढ़ी–लिखी, संवेदनशील आधुनिक नारी और उसके प्रश्नों, द्वन्द्वों और तनावों को ध्यान में रखकर लिखी गयी हैं, अतः इनका कथ्य और शिल्प पाठक से एक निश्चित समझदारी और संवेदनशीलता की माँग करता है।

उपसंहार

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्री के रूप में जन्म लेना मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। निजी सम्पत्ति और उत्तराधिकार के विचार की उत्पत्ति ने परिवार संस्था को जन्म दिया। स्वरक्त सन्तान की पहचान के लिए जरूरी था कि स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित किया जाए। इस कारण विवाह और परिवार संस्थाओं का निर्माण किया गया। स्त्री की सबसे बड़ी ताकत– उसकी प्रजनन शक्ति और उसकी विशिष्ट शारीरिक संरचना ही उसके लिए अभिशाप बन गई। पुरुष ने अपने पुत्र के रूप में पुरुष को ही उत्तराधिकारी बनाया और यहीं से स्त्री के दमन, शोषण और दोयम दर्जे की शुरुआत हो गई। यह स्त्री की ऐतिहासिक हार थी। स्त्री के शोषण एवं दमन पर स्नेह का मुलम्मा चढ़ाकर उसे पुरुष ने सदा के लिए अपना गुलाम बना लिया। उसके भीतर कूट–कूट कर भरा गया कि उसकी शारीरिक संरचना उन्हीं भूमिकाओं के अनुकूल है, जो पुरुष ने उसके लिए निर्धारित की हैं। इस प्रकार स्त्री की भिन्न जैविक संरचना को पुरुष ने हीनता का सूचक बना दिया।

17वीं –18वीं शताब्दी में दुनिया भर में घटित प्रबोधन कालों और पुनर्जागरणों के फलस्वरूप आधुनिकता की अवधारणा का विकास हुआ। विचारधारा के रूप में उदारवाद का उदय हुआ। हर विचार एवं मूल्य को तार्किकता की कसौटी पर कसा जाने लगा। तार्किकता, विवेकसम्मतता और वैज्ञानिकता तथा मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों (स्वतंत्रता, समानता और सम्पत्ति का अधिकार) को विशेष महत्त्व दिया गया। पूँजीवाद के उदय ने उदारवाद को बढ़ावा दिया। विचारों के केन्द्र में 'व्यक्ति' और 'उसके अधिकार' आ गए। फ्रांसीसी, क्रांति ने पाश्चात्य जगत, अर्थात् पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका, में एक नई जीवन दृष्टि विकसित की।

'स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व' का नारा देने वाली फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप जब 'मनुष्य एवं नागरिक अधिकारों का घोषणा पत्र' पारित हुआ तो प्रबोधनयुगीन मूल्यों में अटूट विश्वास रखने वाली स्त्रियाँ हतप्रभ रह गईं। घोषणा–पत्र में स्त्री–अधिकारों की कोई चर्चा नहीं की गई थी। ओलम्पी डी गूँजे

और मेरी वोलस्टनक्राफ्ट जैसी प्रतिभावान स्त्रियों ने इसे 'स्त्री जाति' के प्रति अन्याय के रूप में देखा। 1792 में मेरी वोलस्टन क्राफ्ट ने 'ए विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमेन' नामक पुस्तक लिखकर फ्रांसीसी क्रांति के प्रति स्त्रियों के आक्रोश को स्वर दिया। उदारवादियों, काल्पनिक समाजवादियों, विलियम थाम्पसन आदि ने स्त्री–अधिकारों की खुली वकालत की। 19वीं शताब्दी में जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'स्त्रियों की पराधीनता' और एंगेल्स ने 'परिवार, निजी सम्पत्ति एवं राज्य की उत्पत्ति (1884) पुस्तकें लिख स्त्री–अधिकारों की लड़ाई को नई ताकत दी।

दो विश्वयुद्धों के बीच प्रथम नारीवादी आंदोलन की गति धीमी पड़ गई। व्यवस्था द्वारा स्त्री–हितों की अनदेखी ने नारीवादी आंदोलन के द्वितीय चरण को जन्म दिया। इस चरण में स्त्री की अधीनस्थ स्थिति पर व्यवस्थित ढंग से विचार किया गया। स्त्री को अधीनस्थ बनाने वाली विचारधारा और सामाजिक संरचना को 'पितृसत्ता' (1975) नाम दिया गया। परिवार एवं विवाह जैसी 'सहायक संस्थाओं' को चिन्हित एवं परिभाषित किया गया। स्त्री की जैविक संरचना को उसकी गुलामी का कारण मानते हुए इसे जैविक निर्धारणवाद का नाम दिया गया। प्रथम चरण के नारीवादी आंदोलन की विशेषता यह थी कि इसने यूरोप और अमेरिका में ही नहीं वरन् एशिया में भी स्त्री–अधिकारों की आवाज उठाई।

भारत में पुनर्जागरणकाल में स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए कई सुधार आंदोलन चलाए गए। स्वाधीनता–संग्राम के समय स्त्रियों को घर से बाहर आकर सार्वजनिक भूमिका निभाने का अवसर मिला। 20वीं सदी के प्रारम्भ में पढ़ी–लिखी स्त्रियों की 'नई पीढ़ी' ने स्त्री प्रश्नों को विशुद्ध स्त्री–दृष्टि से जाँचा–परखा और उनके अधिकारों की लड़ाई को आगे बढ़ाया। स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक रूप से स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों की घोषणा ने स्त्री को नई राह दिखाई। सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के कारण स्त्रियों को शिक्षा एवं रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में जाने के अवसर मिले। 1975 को अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष एवं 1975–85 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक के रूप में मनाया गया। शिक्षा को स्त्री की दशा सुधारने के लिए प्रमुख हथियार बनाया गया।

सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों ने स्त्री को घर की चारदीवारी से निकल कर शिक्षा एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए। विभिन्न आंदोलनों के

माध्यम से स्त्री प्रश्न भी उठते रहे। स्त्री ने हर क्षेत्र में अपनी प्रबल दावेदारी प्रस्तुत की। साहित्यजगत भी इससे अछूता नहीं रहा। स्त्री रचनाकारों ने स्त्रियों की समस्याओं को स्त्री की दृष्टि से साहित्य में दर्ज किया। 'अस्मिताओं' के अपने अधिकारों के लिए संघर्षों ने स्त्री को भी अपने अधिकारों के प्रति मुखर बनाया। आर्थिक स्वनिर्भरता ने स्त्री की सोच में आमूल–चूल परिवर्तन पैदा किए। कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, नासिरा शर्मा, राजी सेठ आदि ने बदलती परिस्थितियों में स्त्री की बदली हुई भूमिका और उसकी समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वर दिया। '70 और '80 के दशक के बाद '90 के दशक तक आते–आते एक सर्वथा भिन्न सोच वाली नई पीढ़ी का उदय हुआ। यह पीढ़ी स्वतंत्रता को सही मायनों में जीना जानती थी। हिन्दी साहित्य में 'दलित' एवं 'स्त्री' विमर्श के केन्द्र में आये। नए नैतिक मानदण्ड विकसित हुए। समाज के शोषितों, वंचितों ने साहित्य के माध्यम से पितृसत्ता और जाति व्यवस्था के शोषक चरित्र को उजागर किया।

सातवें, आठवें और कुछ हद तक नौवें दशक के उग्र, सतही और भ्रामक लेखन के स्थान पर अपेक्षाकृत स्थिर, सुव्यवस्थित एवं विचारपूर्ण स्त्री–लेखन की शुरुआत हुई। इस चरण के स्त्री–लेखन में स्त्री–मुक्ति के प्रश्न को समस्त शोषितों–वंचितों की मुक्ति तक विस्तृत किया गया। पितृसत्तात्मक विचारधारा और उसकी संस्थाओं के स्त्री–विरोधी चरित्र को बखूबी समझ लेने के बाद स्त्री ने अपनी मुक्ति के रास्ते स्वयं तलाशना शुरु किया। समकालीन महिला लेखन में आधुनिक स्त्री की विभिन्न छवियों और समस्याओं को ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत किया गया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विकल्प के तौर पर न्याय पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था की माँग की गई। सदियों से शोषित स्त्री ने अब हर तरह के शोषण, दमन का मुखर विरोध करना शुरु कर दिया है।

जया जादवानी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक आधुनिक स्त्री–छवियों को अपनी कहानियों में चित्रित करती हैं। इन कहानियों के माध्यम से जया सदियों से अज्ञानता की बेड़ियों में कैद 'कब्र में सोई हुई स्त्रियों' के जागने का आह्वान करती हैं। अपने 'स्व' के प्रति जागरुक ये नायिकाएँ समाज में अपनी इयत्ता तलाशने के साथ–साथ अपने समय, समाज एवं संस्कृति का गहन विश्लेषण करती हैं। अपने

भीतर के उजालों से साक्षात्कार करके ये स्त्रियाँ बाह्य जगत की विद्रूपताओं से संघर्ष करने निकल पड़ती हैं। आधुनिक स्त्री ने अपनी दैहिक विशिष्टता और सर्जन क्षमता को पहचान लिया है।

सुशिक्षित, संवेदनशील आधुनिक स्त्री के प्रति जया जादवानी काफी आशान्वित हैं। जया की कहानियों में हमारे समय एवं समाज की स्त्री, उसके प्रश्नों और संघर्षों को स्पष्ट देखा जा सकता है। मनुष्य मात्र के अधिकार और स्वतंत्रता की पक्षधर जया की कथा–नायिकाएँ दूसरों की मुक्ति के लिए भी प्रयासरत हैं। सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर निपट अकेले खड़े पुरुष के भय को समझ चुकने के बाद ये कथा–नायिकाएँ अब पुरुषों के अत्याचारों से आतंकित नहीं होती हैं। आत्मसाक्षात्कार के बाद आत्मविस्तार के लिए निकल पड़ी स्त्रियों के लिए पूरा आकाश उनका क्षेत्र है। स्त्री–पुरुष सम्बंधों में आये तनाव और उसके कारणों को भी जया की कहानियाँ बखूबी उजागर करती हैं।

जया के यहाँ एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए स्त्री–पुरुष दोनों का सहयोग अपेक्षित है। पुरुष समाज की मानसिकता और सामाजिक संरचना में बदलाव के बिना किसी की भी मुक्ति एक सपना ही रह जाएगी। स्त्रियों के शोषण एवं दमन की नींव पर खड़े भवन में पुरुष भी कभी चैन से नहीं रह पायेगा। जया की कहानियाँ अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाली तथा पितृसत्तात्मक संस्कारों को ढोते रहने वाली दोनों ही प्रकार की स्त्रियों के लिए उचित दिशा–निर्देशक का काम कर सकती हैं।

'मुझे ही होना है बार–बार' संग्रह की कहानियों में आत्मसाक्षात्कार की कठिन प्रक्रिया से गुजर कर जया की नायिकाएँ 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है', संग्रह में आत्मविस्तार की ओर चल पड़ती हैं। भीतर से मजबूत एवं आत्मविश्वास से भरी ये स्त्रियाँ अपने 'स्व' को प्रमाणित करने के साथ ही एक सहज, सरस एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की रचना की ओर उन्मुख होती हैं।

जीवन के प्रति रागात्मकता जया की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। जया अपनी कहानियों में विषयवस्तु, परिवेश एवं पात्रों की स्थिति के अनुकूल भाषा का इस्तेमाल करती हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि जया जादवानी की कहानियों में अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक आधुनिक स्त्री की विभिन्न मुद्राओं एवं समस्याओं का चित्रण अत्यंत सफलतापूर्वक किया गया है। मध्यमवर्गीय समाज में स्त्री की जटिल स्थिति को उजागर करने एवं उसे मुक्ति की दिशा की ओर अग्रसर करने में ये कहानियाँ पूरी तरह सक्षम हैं।

परिशिष्ट

जया जादवानी से बातचीत (साक्षात्कार)

प्रश्न 1. स्त्री मुक्ति से आपका क्या तात्पर्य है? आपकी कहानियों में स्त्री मुक्ति की दिशा क्या है?

उत्तर जब हम संगठित होकर किसी भी प्रकार की मुक्ति के लिए मांग करते हैं या उस मुक्ति के लिए कोशिश करते हैं, तो उसका अभिप्राय यही होता है कि किन्हीं अन्य ने हमें गुलाम बना रखा है। यह एक स्वाभाविक प्रतिकिया और प्रकिया है। किंतु जब हम व्यक्तिगत रूप में किन्हीं संगठित धारणाओं या विश्वासों के अधीन होते हैं तो उनसे मुक्त हुए बिना हमें किसी या किन्हीं अन्य से वास्तविक मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरी कहानियों और उपन्यासों में 'मुक्ति' नायिका के उस व्यक्तित्व से झलकती है जो अलग भांति का सजग जीवन जीती है या वैसा जीवन जीने के लिए छटपटाती है। इस मुक्ति की दिशा सिर्फ स्त्री की मुक्ति की तरफ नहीं जाती, बल्कि उससे संबंधित हर व्यक्ति की मुक्ति के सम्मान की तरफ पहुंचती है। उसके बाद हमें और अन्य को मुक्ति के रास्ते स्पष्ट दिखाई दे सकते हैं। हम स्त्रियां निश्चय ही सदियों से सामाजिक शोषण का शिकार रही हैं और उससे मुक्त होने के लिए निश्चय ही संगठित उपाय अपरिहार्य हैं, लेकिन इसी कारण हमारे उपाय भी अधिक मौलिक, अधिक संवेदनशील और अधिक कारगर होने चाहिए।

प्रश्न 2. वर्तमान समय में स्त्री में आए बदलावों ने स्त्री पुरुष सम्बंधों को किस रूप में प्रभावित किया है?

उतर जो स्त्रियां पुरुष से अपने संबंधों को संतुलित और न्यायसंगत बनाने का सपना देखती हैं, उन्हें वर्तमान समय में इसके अधिक लाभ मिले हैं। सतत चौकसी के बिना किसी भी बदलाव का सार्थक लाभ भी नहीं लिया जा सकता। वर्तमान समय में स्त्री–पुरुष को एक–दूसरे के निकट आने के अधिक अवसर मिले हैं। संग–साथ और उसके चुनाव के नए रास्ते बने हैं। बाज़ार के अच्छे या बुरे विस्तार और वैज्ञानिक उपकरणों ने तो उनके संपर्कों में कांति ही ला दी है। मोबाइल फोन का उदाहरण लें तो

इस माध्यम ने एक सही स्त्री को एक सही पुरुष के निकट आसानी से पहुंचने की छूट दे दी है। जो लोग इस अवसर को संबंधों के सुखद विकास में लगाएंगे, उन्हें सहज ही बेहतर पड़ाव मिलेंगे।

प्रश्न 3. 'स्त्री देह पर स्त्री का अधिकार' को आप कैसे परिभाषित करेंगी?

उत्तर यदि आप स्नोवा बॉर्नो की कहानियां देखें तो वहां देह पर स्त्री के अधिकार के नवीनतम रूप दिखाई देंगे, जो दुर्लभ होकर भी आज स्त्री के हाथ से अधिक दूर नहीं रह गए है। 'हंस' के मार्च, 2009 में स्नोवा बॉर्नो की कहानी 'लो, मैं आ गई तुम्हारे पास' को देखें तो वहां देह पर स्त्री के अधिकार के अधिक गहरे और अधिक खुले मार्ग बनते हैं। मुक्ति और अधिकार तभी हमारे जीवन को नए सांस देते हैं, जब हम व्यक्तियों या व्यवस्थाओं से पूर्व अपने तौर–तरीकों को सजग और कारगर बना लेते हैं। देह की स्वतंत्रता हमारी चेतना से जुड़ी हुई है, जहां हम अपने तल के पुरुष से एक होने के लिए किसी जल्दबाज़ी में नहीं पड़तीं, बल्कि उस मुकाम के लिए भीतर से समर्थ होती जाती हैं। वहां हम देह की भी मालिक हो जाती हैं, भले ही वहां अकेले रह जाने की भी नियति सामने खड़ी हो।

प्रश्न 4. 'अन्दर के पानियों से कोई सपना काँपता है, 'मुझे ही होना है बार–बार' की कहानियों में अक्सर मध्यमवर्गीय, खाते–पीते घरों की पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ सामने आती हैं। विविध वर्गीय, जातीय या आदिवासी, गरीब स्त्री की समस्याओं के बारे में आप की क्या राय है?

उत्तरः यह स्वाभाविक है कि जब आपके पास पर्याप्त अवसर और सामर्थ्य होते हैं, तभी आप अपने और दूसरे के अधिकार की लड़ाई आसानी से जीत सकते हैं। सबसे पहले हमें स्वयं समर्थ होना होता है। उसी के बाद आपकी रचना या आपका प्रयास फल सकता है। हर स्त्री एक जैसा उपाय नहीं करती। संघर्ष के विभिन्न स्तर हैं। सदियों से चली आती वैवाहिक और सामाजिक परंपराओं के भीतर जीने वाली निरुपाय स्त्रियों को निश्चय ही अधिक दमन का शिकार होना पड़ता है। बच्चों और

उनकी भावनात्मक जरूरतों के बीच रोजी–रोटी के लिए पिसती स्त्रियां कैसे सहसा समर्थ बन पाएंगी? मानसिकता और न्यायपूर्ण व्यवस्था में निरंतर विकास हो तो ही बेहतर आसार बनेंगे। अक्सर उनके बीच की कोई सबल स्त्री उनके लिए काम भी करने लगती है, लेकिन प्रेरणा और सहयोग अपनी जगह है, बदलाव लाने वाला समय अपनी जगह। हम अपने जीवन से कांति कर सकते हैं, लेकिन उसे किसी को दे नहीं सकते। शायद इसीलिए कांतियां लगातार असफल होती हैं। सबसे बड़ी कांति अपने भीतर और फिर अपने जीवन की रचना से ही संभव है। आगे चल कर उसके नतीजे मिलते ही हैं।

प्रश्न 5. 'मातृत्व' और 'स्त्री की सम्पूर्णता' – पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तरः मातृत्व स्त्री का नैसर्गिक स्वभाव है। स्त्री द्वारा मनचाहे पुरुष की सहभागिता से बच्चे को जन्म देना स्त्री की वास्तविक रचना और तृप्ति मानी जाती है। यह सहजता वहीं फलदायक है, जहां इसे स्त्री की प्रकृति के अनुरूप सामाजिक नियम और पोषण उपलब्ध है, अन्यथा कई सामाजिक परिवेशों में मातृत्व को असहज और आतंकित बनाया जाता रहा है। युद्धों और सांप्रदायिक विद्वेषों के बीच स्त्री सदा भयभीत रहती है कि उसके बच्चे लड़ाइयों में झोंक दिए जाएंगे। अपवाद को कुछ स्त्रियां इससे अलग भी रहती आई हैं। अभी अपवाद को ही ऐसे समाज बन पाए हैं, जहां मातृत्व कानूनी स्तर भी स्त्री की इच्छा पर है। स्त्री की संपूर्णता बेशक उसके सही पुरुष से संपन्न होती है, जो न भी मिले, तो उसे गहरे उपायों से अपने भीतर रचा जा सकता है। मैंने स्नोवा बॉर्नो की कहानियों की बात की, जिनमें यह रचना बहुत विस्तार से सामने आई है। वहां स्त्री अपने सही पुरुष के पास बेशर्त होकर आती है और भविष्य के किसी खतरे से डरने के स्थान पर अपने बूते की ही अधिक चिंता करती है।

प्रश्न 6. क्या परिवार एवं विवाह संस्था स्त्री के शोषण के मुख्य केन्द्र हैं? यदि हाँ, तो इनसे आजादी की सार्थक दिशा आपके किस रूप में तलाशना चाहेंगी?

उत्तरः **जहां भी ठहरी हुई रीतियां और नीतियां होती हैं, वहां परिवार और विवाह सबसे पहले शोषण का केंद्र बन जाते हैं। इससे मुक्ति का उपाय वही है, जिसकी मैंने पहले चर्चा की है : अपनी समझ और उपलब्ध साधनों का यथासंभव उपयोग इस भांति करना कि परिवार के उन लोगों के साथ अन्याय न हो जिन्हें हमारी वास्तविक जरूरत है। विवाह संस्था को मैं सही नहीं मानती, लेकिन दो व्यक्तियों के बीच जन्मे प्रेम की परिणति को सच्चा विवाह मानती हूं, चाहे वह कैसी भी रीति में निभे। जिस विवाह को ढोना पड़े, वह कितना भी मान्य हो, कोई भी सजग स्त्री उसे स्वीकार नहीं कर सकती।**

प्रश्न 7. आज भी हमारे समाज, घरों में पढ़ी–लिखी स्त्री गुलामी की परम्परा को किसी न किसी रूप में ढोए चली जा रही है। विवाह आज भी मध्यमवर्गीय स्त्रियों का मुख्य (प्राथमिक) 'कैरियर' है, क्या आप महसूस करती हैं, कि 'गुलामी के आनंद के लालच' में स्त्री 'स्वतंत्रता के खतरे' उठाने में डर रही है। (या उठाना नहीं चाहती।)

उत्तरः **मनुष्य का आज तक का विकास ऐसा है कि आप हर किसी को न तो स्वतंत्रता दे सकते हैं, न ही उस स्वतंत्रता का आनंद लेने की समझ। अधिकांश स्त्रियां आज भी यदि परतंत्रता में सुख चाहती हैं तो इसके पीछे बड़ा सच यही है कि अधिकांश पुरुष भी परतंत्रताओं और स्वतंत्रताओं में फ़र्क करना नहीं जानते। खुले आकाश में उड़ना और उसके खतरे समझना बहुत कम लोगों के बूते की बात है।**

प्रश्न 8. पढ़ी–लिखी कामकाजी स्त्रियों की आपकी दृष्टि में क्या समस्याएँ हैं?

उत्तरः **पढ़ी–लिखी और कामकाजी स्त्रियों की बड़ी समस्या यही हो सकती है कि यदि उनका पढ़ना–लिखना और उनका कामकाज करना दूसरों द्वारा तय किया जाता है तो वे जीवन को चूकती रहेंगी। हमें अपने सपने,**

अपनी किताबें और अपने कामकाज अपने भीतर के सच से संचालित करने आने चाहिए।

प्रश्न 9. आर्थिक आजादी वास्तविक मायनों में स्त्री की आजादी में कितनी सहायक हो पाई है। क्या स्त्री रोजगार पाने मात्र से आर्थिक या सामाजिक रूप से स्वतंत्र हो पाई है?

उत्तरः **मानसिक, आर्थिक या सामाजिक स्थितियों में संतुलन साधे बिना कोई आज़ादी हमारे काम कैसे आ सकती है? हमें जब तक स्वयं मालूम नहीं होता कि हमें अपने वास्तविक विकास के लिए क्या चाहिए, तब तक कोई भी संपन्नता या बाहरी हैसियत एक ढकोसला बन जाती है। हां, जहां आपको मालूम है कि आसानी से आप अपना मनचाहा नहीं पा सकतीं, वहां बहुत बेढंगे होकर भी दूसरों से जिंदगी छीनी जा सकती है। उसके बाद आपका अपना जीवन स्पष्टतया दिखाई देने लगेगा।**

प्रश्न 10. स्त्री मुक्ति के एक 'समान फ्रेमवर्क' की कमी भारतीय नारीवादी चिन्तन में दृष्टिगोचर होती है, इस विषय में आपके क्या विचार हैं?

उत्तरः **स्त्री व पुरुष अपने नैसर्गिक स्वरूप में बहुत भिन्न हैं। वे एक भांति की नहीं, समान स्तर की स्वतंत्रता चाहते हैं। वे एक–दूसरे के जोड़ हैं। इस सच्चाई को समझे बिना हम समानता को नहीं पा सकते। स्त्री–मुक्ति के लिए प्रथम युक्ति यही है कि हम एक–दूसरे के स्वभाव को कोसें नहीं, बल्कि उसके पर–पूरक रूपांतरण के लिए सम्मानजनक उपाय करें। एक ओर हमारे यहां समानता के लिए सुस्ती दिखाई देती रही है, दूसरी ओर समानता के नाम पर छीना–झपट है। स्त्री और पुरुष यदि अपने–अपने लिए सही साथी तलाश करने की तड़प में नहीं जिएंगे तो कोई भी समानता काम नहीं करेगी। जीवन वहीं खिलता है, जहां हम जानते हैं कि हमें क्या चाहिए और क्यों चाहिए?**

ग्रन्थ–सूची

आधार–ग्रंथ

जया आदवानी : 'मुझे ही होना है बार–बार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2001

: 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002

संदर्भ–ग्रन्थ–सूची

अनामिका : स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2000

अरविन्द जैन : औरतः अस्तित्व और अस्मिता, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000

: औरत होने की सज़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, परिवर्धित संस्करण 2006

उषा महाजन : बाधाओं के बावजूद नई औरत, मेधा बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001

एक अज्ञात हिन्दू औरत : सीमंतनी उपदेश (सं.–डॉ. धर्मवीर), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006

एंगेल्स : परिवार, निजी सम्पत्ति एवं राज्य की उत्पत्ति (अनु. योगेन्द्र नागपाल), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1985

कमला भासीन, निगहत सईद खान : नारीवाद क्या है, ग्रामोन्नति संस्थान, महाबा, संस्करण 2001

कात्यायनी : दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, तृतीय संस्करण 2004

कुंदनिका कापड़िया : दीवारों से पारः आकाश (अनु. नंदिनी शाह), साहित्य

अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2007

गीताश्री : स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008

गोपा जोशी : भारत में स्त्री असमानता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, संस्करण 2004

जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (सम्पादक) : स्वाधीनता संग्राम, हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

जर्मेन ग्रीयर : बधिया स्त्री (अनु. मधुबी. जोशी), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005

जॉन स्टुअर्ट मिल : स्त्रियों की पराधीनता (अनु. प्रगति सक्सेना), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति 2003

दीप्ति प्रिया महरोत्रा : भारतीय महिला आंदोलन : कल आज और कल, बुक्स फॉर चेन्ज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2003

प्रभा खेतान : उपनिवेश में स्त्री, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006

: बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007

महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995

मल्लिका सेनगुप्त : स्त्री लिंग निर्माण (अनु. साधना शाह), रेमाधव पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007

मैनेजर पाण्डेय : अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002

मैत्रेयी पुष्पा : खुली खिड़कियाँ, सामयिक पेपरबैक्स,

संस्करण–2005

रमेश उपाध्याय, संज्ञा (सम्पादक) : आज का स्त्री आंदोलन, शब्द संधान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004

राकेश कुमार : नारी वादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाण), द्वितीय संस्करण 2004

राजकिशोर : स्त्री–पुरुष, कुछ पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2006

राजकिशोर (सम्पादक) : स्त्री, परम्परा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2004

: स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2006

: नैतिकता के नए सवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

राजेन्द्र यादव : आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007

राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे : पितृसत्ता के नए रूपः स्त्री और भूमण्डलीकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2003

राधा कुमार : स्त्री–संघर्ष का इतिहास (अनु. रमाशंकर सिंह, 'दिव्य दृष्टि'), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

रेखा कस्तवार : स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

वर्जीनिआ वुल्फ : अपना कमरा (अनु. गोपाल प्रधान) संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण 2008

विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े : भारतीय विवाह संस्था का इतिहास, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2008

वीर भारत तलवार : रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण 2006

श्यामा चरण दुबे : समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2002

सरला माहेश्वरी : नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति 2007

साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता (संम्पादक) : नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुददे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, पुनर्मुद्रण 2006

सुभाष कश्यप : भारतीय महिलाओं की दशा, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2006

सुमन कृष्णकांत (संपादक) : इक्कीसवीं सदी की ओर, रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001

सुमन राजे : हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करण 2003

क्षमा शर्मा : स्त्री का समय, मेधा बुक्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2001

: स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति 2008

English Books

Geraldine Forbes : Woman in Modern India, Cambridge University Press, Printed in India at Republika Press Pvt. Ltd. Fifth Reprint 2009

Karen Offen, Ruth Roach pierson, Jane Rendall (etd) : Writing Women's History, Macmillan Academic and Professional Ltd., London, First Published 1991

Sushila Singh : Feminism : Theory, Criticism, Analysis, Pencraft International, Delhi, First Edition 1997

पत्र–पत्रिकाएँ

आजकल , मार्च 2008, वरिष्ठ सम्पादक–योगेन्द्र दत्त शर्मा, सम्पादक –सीमा ओझा, लोदी रोड, नई दिल्ली

कथाक्रम, जुलाई–सितम्बर 2007, वर्ष–8 अंक–33, सम्पादक–शैलेन्द्र सागर, इस अंक का सम्पादन–रजनी गुप्त, लखनऊ।

जनमत, मई 2006, वर्ष–25 अंक–2, (स्त्री–विमर्श विशेषांक) प्रधान सम्पादक – रामजी राय, पटना।

नया ज्ञानोदय, जुलाई 2008, प्रधान सम्पादक –रवीन्द्र कालिया, नई दिल्ली

बहुवचन 12, सम्पादक –प्रो. जी गोपीनाथन, महात्मा गाँधी अन्तराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

लमही, अप्रैल–जून, 2009, सम्पादक– ऋत्विक राय, गोमतीनगर, लखनऊ,

वसुधा 59–60 स्त्री : मुक्ति का सपना, सम्पादक– प्रो. कमला प्रसाद, अतिथि सम्पादक–अरविन्द जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2004

वसुधा – 78 वष–5, अंक–2, प्रधान सम्पादक– प्रो. कमला प्रसाद, सम्पादक– स्वयं प्रकाश, राजेन्द्र शर्मा, भदभदा रोड, भोपाल

वसुधा –मार्च 2009, दलित एवं स्त्री मुक्ति का सपना, रचनात्मक अभिव्यक्ति के संदर्भ।

वर्तमान साहित्य, अप्रैल, 2005, सम्पादक–कुँवरपाल सिंह, नमिता सिंह, रामघाट रोड, अलीगढ़

समकालीन सृजन, अंक–21, प्रकाशन वर्ष 2002, सम्पादक– शंभुनाथ कलकत्ता

सृजन संवाद, 2006–08 तक, अंक 7–8 (संयुक्तांक), मई 2008 में प्रकाशित, सम्पादक– ब्रजेश, लखनऊ

हंस, दिसम्बर 2002, सम्पादक –राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली

हंस, अक्टूबर 2004 अगस्त 2004 (स्त्री विमर्श विशेषांक)

हंस, मार्च, 2009